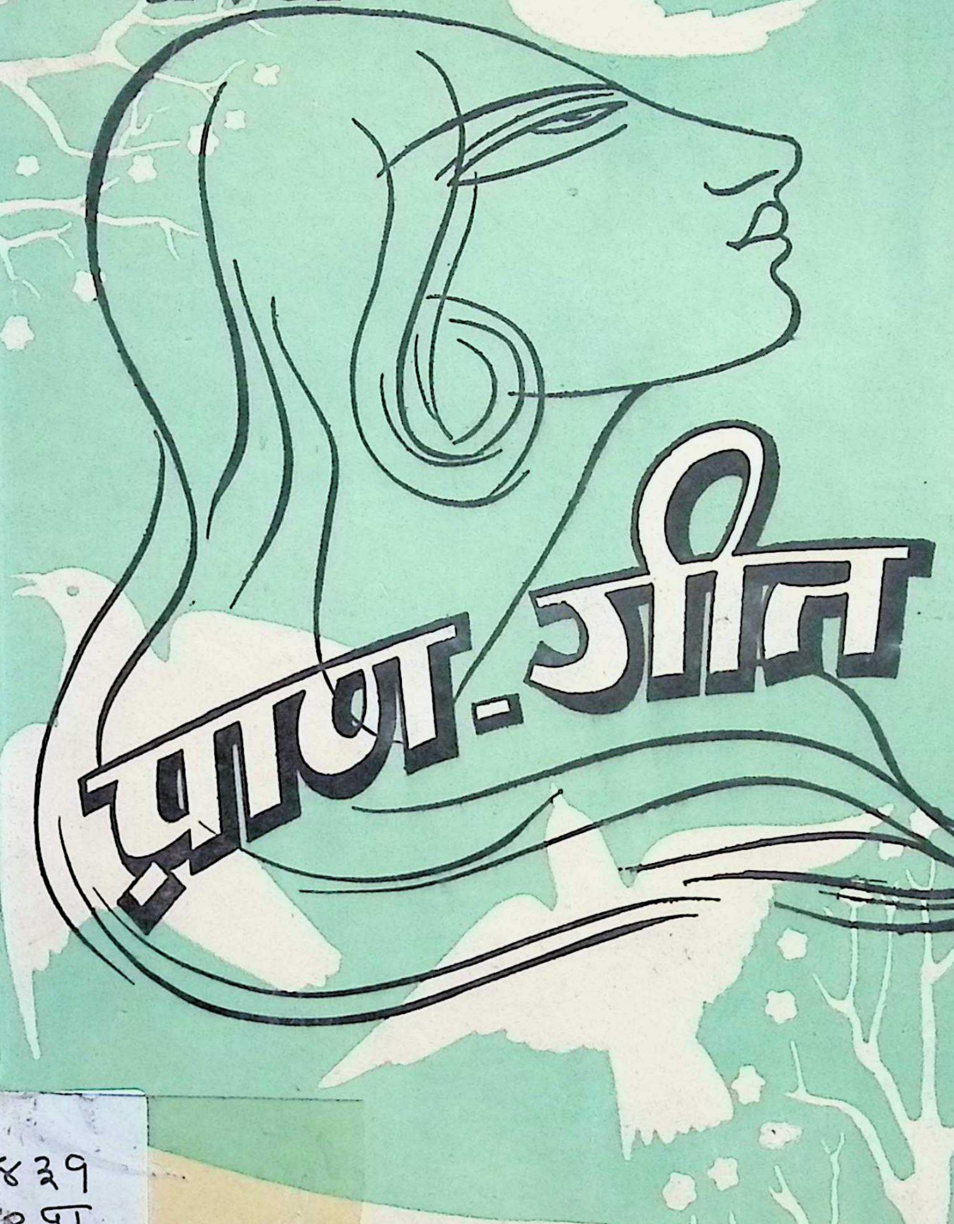
नीरज



प्राण-गीत

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

प्राण-गीत

लेखक

'नी र ज'

१९५७

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

दूसरा संस्करण, १९५७
मूल्य ३.००

मुद्रक
मूवीज़ प्रेस
चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-६

दृष्टिकोण

मेरे कुछ मित्रों का आग्रह है कि मैं अपनी कविता की व्याख्या करूँ। जब मुझसे आग्रह किया गया तब मैंने स्वीकार कर लिया, पर अब जब व्याख्या करने बैठा हूँ तो पाता हूँ कि असमर्थ हूँ। मेरे विचार से कविता की और विशेष रूप से गीत की व्याख्या नहीं हो सकती। वह क्षण जो कण्ठ को, स्वर और अधरों को वाणी दे जाता है, कुछ ऐसा अचिन्त्य, अनुपम और अनमोल है कि पकड़ में ही नहीं आता। उसे पकड़ने के लिए तो स्वयं खो जाना पड़ता है और जहाँ खोकर पाना हो वहाँ व्याख्या कैसे की जाय ?

गद्य जहाँ असमर्थ है, वहाँ कविता जन्म लेती है और जहाँ कविता भी लाचार है, वहाँ गीत आता है। लिखे जाने का अर्थ गद्य है और गाये जाने का अर्थ गीत है। फिर लिखे जाने से गाये जाने की व्याख्या कैसे की जाय ?

जीवन जहाँ तक एक है, वहाँ तक वह काव्य है। जहाँ एक न होकर वह अनेक हैं वहाँ विज्ञान है। अनेकत्व से एकत्व की ओर जाना कविता करना है और एकत्व से अनेकत्व की ओर आना तर्क करना है। व्याख्या तर्क ही है।

तर्क का अर्थ है काटना—टुकड़े करना। किन्तु कविता काटती नहीं तोड़ती नहीं, जोड़ती है। अभेद में भेद के ज्ञान की शर्त है तर्क, भेद में अभेद की सृष्टि का भाव है काव्य। तर्क द्वारा जो सत्य प्राप्त होता है, वह सत्य तो हो सकता है, किन्तु सुन्दर नहीं और जो सुन्दर नहीं है, वह आनन्द तो कभी भी नहीं बन सकता। किन्तु काव्य में सुन्दर के बिना सत्य की गति नहीं। इसीलिये साहित्य के क्षेत्र में जब हम 'सत्यं' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब उसका योग 'शिवं' और 'सुन्दरं' से अवश्य करा देते हैं। हमें अकेला सत्य अभीष्ट नहीं, सत्य का गुण भी हमारा इष्ट है, इसीलिये हम कहते हैं—'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्'।

एक बात और भी है। अपनी कविता की व्याख्या करने का अर्थ है अपनी व्याख्या करना—उस चेतना की व्याख्या करना, जिसके हम कवि हैं। वह चेतना अखंड है। अखंड है इसीलिये आनन्दस्वरूप है। खण्डित होने पर वह आनन्द नहीं रह पाती। काव्य भी आनन्द है—आनन्द से भी एक और पग आगे की वस्तु--स्वर्गानन्द सहोदर और उनका आनन्द भी उसकी अखण्डता में

ही है; खण्डित होने पर तो वह आनन्द न रहकर निरानन्द हो जायेगा। इसी लिये मैं कहता हूँ कि काव्य की व्याख्या नहीं की जा सकती।

पर हाँ, जिस प्रकार कुसुम के सुवास की व्याख्या न होकर उसकी पँखुरियों के रूप-रंग (बाह्यवरण) के विषय में कुछ बताया जा सकता है, उसी प्रकार काव्य के भाव की मीमांसा न सम्भव होकर भी उसके साधनों और उसके कारणों के विषय में कुछ संकेत दिये जा सकते हैं।

जीवन के सत्ताइस पृष्ठ पढ़ने के बाद मेरी अनुभूति अब तक केवल तीन सत्य प्राप्त कर सकी है—सौन्दर्य, प्रेम और मृत्यु। इनका अर्थ मेरी कविता में क्रमशः चिति (सौन्दर्य), गति (प्रेम) और यति (मृत्यु) है। अपने पाठकों और आलोचकों की सुविधा के लिये मैं प्रत्येक की अलग-अलग व्याख्या करूँगा—

सौन्दर्य—

सौन्दर्य का अर्थ मेरी दृष्टि में संतुलन (Harmony), क्रम (Order), आकर्षण (Gravitation or Attraction), स्थिति-कारण (Force of existence) और सब मिलाकर चिति शक्ति है। उदाहरणार्थ मान लीजिये, आपके सम्मुख चार व्यक्ति खड़े हैं। आप उन चार व्यक्तियों में से केवल एक को सुन्दर बतलाते हैं और शेष तीनों को नहीं। अब प्रश्न उठता है कि आपके पास वह कौनसा पैमाना है जिससे नाप-जोख कर आपने चार व्यक्तियों में से केवल एक को ही सुन्दर ठहराया। आप कहते हैं—पहले व्यक्ति की न तो मुखाकृति ही सुन्दर है और न उसका शरीर ही सुडौल है, फिर उसे सुन्दर कैसे कह सकते है? दूसरे व्यक्ति को आप यह कह कर असुन्दर ठहरा देते हैं कि उसकी मुखाकृति (नाक, कान, आँख, ओठ आदि) तो सुन्दर हैं, पर उसका शरीर सुडौल नहीं। तीसरे व्यक्ति के लिये आप कहते हैं—उसका शरीर तो सुडौल है, पर उसकी मुखाकृति असुन्दर है—इसलिये उसे भी सुन्दर नहीं कहा जा सकता। चौथा व्यक्ति जिसे आपने सुन्दर बतलाया है, आप कहते हैं कि नख से शिख तक उसका प्रत्येक शरीरावयव निर्दोष है। उसके सम्पूर्ण अंगों में एक समुचित अनुपात (Proportion) है। न उनकी नाक मोटी है न आँख छोटी। न उसके हाथ मोटे हैं और न पाँव पतले अर्थात् उसका सम्पूर्ण शरीर सन्तुलित है और इसीलिये वह सुन्दर है। इसी दृष्टि से यदि आप अपनी ओर भी दृष्टिपात करें, तो आपको पता चलेगा कि स्वयं आपके शरीर में भी पंचतत्वों का एक (Proportion) है, जिसके कारण आपकी स्थिति है यानी आप जीवित हैं। जिस दिन यह अनुपात क्षीण हो जाता है, उसी दिन मृत्यु हो जाती है। उर्दू के महाकवि

चकबस्त ने इसी सत्य को इस प्रकार कहा—

"जिन्दगी क्या है अनासिर में ज़हूरे तरतीब,
मौत क्या है—इन्हीं अजज़ां का परीशां होना।"

जहाँ सन्तुलन है, अनुपात है वहाँ क्रम (Order) है। यूं कहें तो अधिक उपयुक्त होगा कि क्रम ही सन्तुलन है—Order is proportion। सृष्टि में भी एक क्रम है। प्रत्येक गतिशील तत्व में एक क्रम होता है। चलती हुई रेलगाड़ी में भी एक लय होती है। सम्पूर्ण विश्व ही एक लय है। हज़ारों-लाखों वर्ष हो गये, सूरज सदा से सुबह ही निकला और चन्द्रमा रात को ही उदय होता है। न तो किसी ने (केवल कवि को छोड़कर) रात में सूरज देखा और न किसी ने दिन में चाँद। शताब्दियों की माँग का सिन्दूर झर गया, पर सृष्टि के इस क्रम में रंचमात्र भी अन्तर नहीं आया। और इस सृष्टि के सम्राट् विष्णु की ओर भी जरा देखिये। इस संसार के पालन का भार उसे मिला है, पर वह आदिकाल से कमल के पत्ते पर शेष को शय्या बनाये हुए क्षीरसागर में शयन कर रहा है। आश्चर्य की बात है कि वह राजा, जिस पर इतने विशाल साम्राज्य के पालन और संरक्षण का भार है इस प्रकार निश्चेष्ट होकर लेटा है। पर इसमें अचरज की बात कुछ भी नहीं। जिसके राज्य में सब कुछ अपने आप क्रम से संचालित हो रहता है, उस राज्य के राजा को दौड़ धूप की क्या आवश्यकता—वह तो ऐसे निश्चिन्त होकर सोता है जो क्षीरसागर में विष्णु। तो इस सृष्टि में एक क्रम है सन्तुलन है जिसका नाम है सौन्दर्य और जो सम्पूर्ण विश्व की स्थिति का कारण है।

दूसरी तरह से सोचिये। सुन्दर वस्तु की ओर आप देखते हैं तो वह आपको अपनी ओर आकर्षित करती है। आकर्षण चेतन का गुण है यानी जहाँ सौन्दर्य है वहाँ चेतना है, जीवन है। तो सौन्दर्य एक चेतन आकर्षण-शक्ति है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखिये तो पता चलेगा कि सम्पूर्ण विश्व की स्थिति का कारण भी आकर्षण है। ये धरती, आकाश, सूरज, चाँद, सितारे, ग्रह, उपग्रह सब एक आकर्षण-डोर में बंधे घूम रहे हैं—

"एक ही कील पर घूमती है धरा,
एक ही डोर से बस बँधा है गगन,
एक ही साँस में जिन्दगी क़ैद है,
एक ही तार से बुन गया है कफ़न।"

आकर्षण में जिस दिन विकर्षण होता है, उसी दिन प्रलय हो जाती है।

अर्थात् आकर्षण (सौन्दर्य) ही स्थिति है।

हाँ, तो मैं सौन्दर्य को सृष्टि की स्थिति का कारण चिति शक्ति मानता हूँ। जिस दिन सौन्दर्य इस मिट्टी को स्पर्श करता है उसी दिन चेतना (प्राण अथवा ताप) का जन्म होता है। यह एक विज्ञान-सम्मत सत्य है कि दो वस्तुओं के स्पर्श या संघर्ष से ताप (Heat) की उत्पत्ति होती है। मेरे गीतों में कई स्थानों पर इसकी प्रतिध्वनि मिलेगी, जैसे इन पंक्तियों में—

(१) "एक ऐसी हँसी हँस पड़ी धूल यह
लाश इन्सान की मुस्कराने लगी
तान ऐसी किसी ने कहीं छेड़ दी
आँख रोती हुई गीत गाने लगी।"

अथवा

(२) "एक नाजुक किरन छू गई इस तरह
खुद-बखुद प्राण का दीप जलने लगा
एक आवाज़ आई किसी ओर से
हर मुसाफ़िर बिना पाँव चलने लगा।"

अथवा

(३) कहाँ दीप है जो किसी उर्वशी की
किरन ऊँगलियों को छुये बिना जला हो।

अथवा

(४) परस तुम्हारा प्राण बन गया,
दरस तुम्हारा श्वास बन गया।

तीसरे उद्धरण में उर्वशी सौन्दर्य का प्रतीक है, दीपक के रूपक से चेतना के जन्म की ओर संकेत है। चौथे उद्धरण में सौन्दर्य और प्रेम से किस प्रकार प्राण (ताप-चेतना) और श्वास (गति) का जन्म हुआ—इसकी कहानी है। सौन्दर्य और प्रेम द्वारा सृष्टि के उद्भव और विकास का रूपक यह गीत है।

प्रेम—

किन्तु केवल स्थिति या चिति ही जीवन नहीं है, वहाँ गति भी है और जीवन को गति देने वाली शक्ति का ही नाम है प्रेम। तात्विक दृष्टि से प्रेम का अर्थ है—एक से दो होना, दो से अनेक होना और अनेक से फिर एक हो जाना। सृष्टि के विकास का भी यही रहस्य है—'एकोहम् बहुस्याम'। जहाँ

अद्वैत है, वहाँ प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम के लिए द्वैत की आवश्यकता है। द्वैत अनेकत्व को जन्म देता है, किन्तु प्रेम इस द्वैत (व्यक्ति) और अनेकत्व (समष्टि) से होता हुआ अद्वैत की ओर ही जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि एक तत्व से वनी है और उसी में समा जायेगी।

व्यावहारिक दृष्टि से प्रेम का अर्थ है किसी को प्राप्त करने की, और प्राप्त करके स्वयं वही बन जाने की इच्छा-लालसा या आकांक्षा। प्राप्त करने का अर्थ है किसी स्वप्न को, किसी प्यास को या किसी आदर्श को साकार करने की कामना। और कामना ही गति है।

"जब तक जीवित आस एक भी
तभी तलक साँसों में भी गति" (विभावरी)

अथवा

हँस कहा उसने चलाती चाह है
आदमी चलता नहीं संसार में

जब हम अपनी दृष्टि भीतर से बाहर की ओर करते हैं, तभी हम प्रेम (कामना-इच्छा) करते हैं और तभी हम किसी आदर्श को जन्म देते हैं। जो वस्तु भीतर है उसके लिये हमें भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती, किन्तु जो वस्तु बाहर है उसके लिये प्रयत्न अनिवार्य है। यद्यपि प्रेम भी एक भावना का ही नाम है जो भीतर है, किन्तु उसका आकार वाहर होता है। वह किसी व्यक्ति, वस्तु या आदर्श का रूप धारण कर ही साकार हो सकता है--वह निराकार-साकार है। यदि तनिक सूक्ष्म दृष्टि से देखिये तो पता चलेगा कि प्रेम के लिये हम स्वयं (एक) का ही भावना के माध्यम से एक और रूप रचते हैं। जो हमारा इष्ट है वस्तुतः वह 'अपर' नहीं. बल्कि हमारा 'स्व' ही भीतर से बाहर आकर पर' बन गया है. यानो हम स्वयं भीतर से बाहर आकर स्वयं को प्रेम करते हैं : 'निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया।" इसी लिये मैं कहता हूँ कि प्रेम भावना का सूक्ष्म बाह्य प्रयत्न है—व्यष्टि और समष्टि से होकर इष्ट तक आने का एक मार्ग। तो प्रेम एक प्रयत्न है और प्रयत्न ही गति है। जीवन में गति है तो वह प्रेम है।

यहाँ एक प्रश्न पूछा जा सकता है—क्या प्रेम जीवन के लिए अनिवार्य है ? मेरा उत्तर है 'हाँ', किन्तु क्यों ? इसलिये कि वह हृदय की अनिवार्य भूख है। पर इस भूख को समझने के लिये हमें सृष्टि के जन्म तक दृष्टि फैलानी होगी। सारे धर्मग्रन्थों ने स्वीकार किया है कि इस विश्व का उद्भव एक तत्व से हुआ है।

लेकिन यह किस प्रकार संभव है। प्रकृति और पुरुष के संयोग का नाम सृष्टि है दो के बिना जन्म कहाँ। तो मानना पड़ता है कि वह आदि-तत्व जिससे इस विश्व की रचना हुई है, अवश्य ही एक होकर दो था। हमारे यहाँ उसे अर्ध-नारीश्वर कहा गया है। आधा अंग स्त्री का और आधा अंग पुरुष का—एक साथ स्त्री-पुरुष—हाँ। (अभी पपीते की भी कुछ ऐसी नस्लें मिली हैं. जो एक साथ नर-मादा होती हैं) उस अर्धनारीश्वर (एक तत्व) ने प्रेम के लिये या कहिये सृष्टि-प्रसारण के लिये, केलि के लिये. क्रीड़ा के लिये अपने को दो में विभाजित किया (अद्वैत ने द्वैत को जन्म दिया)। दो के बाद चार, चार के बाद आठ और फिर इस तरह सृष्टि बन गई। किन्तु आदि-तत्व के division से संसार में एक बहुत बड़ी ट्रेजडी हो गई कि प्रत्येक चेतन तत्व एक अपूर्ण आत्मा—विभाजित आत्मा हो गया। फलस्वरूप उसके हृदय में प्यास है, भूख है अपने उस आत्मा के साथी (Soul-mate) के लिये जो सृष्टि के आदिकाल से उससे अलग है और जिसको खोजने के लिये, जिसको प्राप्त करने के लिये बार-बार उसे मिट्टी के ये कपड़े बदलने पड़ते हैं—

"नाश के इस नगर में तुम्हीं एक थे
खोजता मैं जिसे आ गया था यहाँ,
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता
तन भटकता कहाँ, मन भटकता कहाँ,
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिये आज तक
मैं सिसकता रहा शब्द में, गान में,
वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना शव बना
मैं भटकता रहा रोज श्मशान में"

बस, आत्मा के साथी के लिये जो प्रत्येक चेतन तत्व में प्यास और चाह है, उसी का नाम प्रेम है और यह प्यास तब तक तृप्ति नहीं बनेगी, जब तक उस मन के मीत से आत्म-सम्बन्ध स्थापित नहीं होगा। यह आवागमन का चक्र भी तब तक चलता रहेगा, जब तक वह नहीं मिलेगा। जिस दिन वह मिल जायेगा, उसी दिन मुक्ति हो जायेगी। मैं ही क्या, मैं जिधर दृष्टि डालता हूँ देखता हूँ—

"दीप को अपना बनाने को पतंगा जल रहा है,
बूँद बनने को समुन्दर का हिमालय गल रहा है,

प्यार पाने को धरा का मेघ है व्याकुल गगन में
चूमने को मृत्यु निशि दिन श्वास पन्थी चल रहा है।" (विभावरी)

तो हम बार-बार अपने बिछुड़े हुए साथी की खोज करने आते हैं, पर वार-बार हम भटक जाते हैं—या तो हम अपना लक्ष्य पूजन-अर्चन (मन्दिर-मस्जिद) को बना लेते हैं, या प्रकृति को या योग-समाधि को। हम मनुष्य हैं, हमारी आत्मा का साथी तो कहीं मनुष्यों में ही मिलेगा। किन्तु हम वहाँ न खोजकर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। फिर मुक्ति कैसे हो? मुझे भी भरमाया गया था—

"खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मन्दिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया,
खैर पर यह हुई उम्र की दौड़ में
ख्याल मैंने न कुछ पत्थरों का किया,
पर्वतों ने झुका शीश चूमें चरण
बाँह डाली कली ने गले में मचल,
एक तस्वीर तेरी लिये किन्तु मैं
साफ़ दामन बचाकर गया ही निकल।"

पर इस बार मेरे पास उसकी तस्वीर थी, इसलिये मैं भूला नहीं। पर अभी गन्तव्य मिला नहीं है—अगर यूँ कहूँ कि मिलकर छूट गया है तो अधिक सही होगा। जीवन का यह बहुत बड़ा अभिशाप और साथ-साथ वरदान भी है कि जो हमारी मंज़िल होती है, जब वह समीप आती है तब या तो हम उसको पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं या वह स्वयं और आगे बढ़ जाती है—

पागल हो तलाश में जिसकी
हम खुद बन जाते रज मग की
किन्तु प्राप्ति की व्याकुलता में
कभी-कभी हम मंज़िल से भी आगे बढ़ जाते।

अथवा

मैं समझता था कि मंजिल पर पहुँच आना-जाना यह खतम हो जायेगा
पर हजारों बार ही ऐसा हुआ पास आकर दूर जाना पड़ गया।

इसी प्रकार जब हम भावना (प्रेम) के माध्यम से अपने उस आत्मा के साथी के निकट पहुँचते हैं, तो वह पीछे खिसकता है और खिसकते-खिसकते

विश्वात्मा में मिल जाता है । अन्त में हम भी उसकी खोज करते-करते विश्वात्मा तक पहुँच जाते हैं—

"मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ मिल गया खड़ा संसार !"

और फिर मनष्य स्वयं ही कहने लगता है—

दूर कितने भी रहो तुम, पास प्रतिपल,
क्योंकि मेरी साधना ने पल निमिष चल,
कर दिया केन्द्रित सदा को ताप बल से
विश्व में तुम और तुम में विश्व भर का प्यार !
हर जगह ही अब तुम्हारा द्वार ।

और जिस दिन मनुष्य अपनी आत्मा का प्रेम (भावना) के द्वारा विश्वात्मा से तादात्म्य स्थापित कर लेता है, उसी दिन उसकी मुक्ति हो जाती है। विश्वात्मा में अपनी आत्मा का अन्तरभाव ही मुक्ति है और यह सदेह ही प्राप्त हों जाती है, आवागमन के चक्र को बहुत दूर छोड़कर !

एक बात इस सम्बन्ध में और कह दूं तो अनुपयुक्त न होगा । जो व्यक्ति प्रेम' को नहीं जानता वह केवल 'मैं' (अहं) को ही जानता है । और केवल 'मैं' को जानने का अर्थ है शेष सृष्टि के रागात्मक सम्बन्ध से हीन हो जाना । किन्तु जो व्यक्ति प्रेम करता है वह 'मैं' (अहं) को समूल नष्ट तो नहीं करता, उसका तुम' से सम्बन्ध स्थापित कर उसका पयुत्थान करता है । वह 'मैं' कहता तो है, पर 'मैं' कहने से पूर्व वह कहता है 'तुम' । यथा—

"गंध तुम्हारी थी मैं तो बस बनकर सुमन चुरा लाया था,
रूप तुम्हारा था मैंने तो केवल दर्पण दिखलाया था ।"

और इस प्रकार वह व्यष्टि की संकुचित सीमा से निकलकर समष्टि की ओर जाता है—अपने व्यक्तित्व का उत्थान कर देवत्व की ओर जाता है। इसीलिये मैं प्रेम को जीवन की गति के साथ-साथ एक बहुत बड़ी शक्ति--एटम बम्ब से भी अधिक प्रबल-शक्ति मानता हूँ और जो उसका विरोध करता है, उससे कहता हूँ—

प्रेम बिन मनुष्य दुश्चरित्र है
अथवा
प्रेम जो न तो मनुज अशुद्ध है ।

मृत्यु—

प्रेम जीवन की गति है । अपनी आत्मा के साथी के लिये जो हम इन विभिन्न रूपों में खोज कर रहे हैं, उसका नाम जीवन है। पर जो खोज करता

है वह थकता भी है। संसार की प्रत्येक वस्तु शक्ति और गति को जीवित रखने के लिए विश्राम लेती है। यह चेतना जो हजारों बरसों से अपने साथी के लिये भटकती फिर रही है, इसको भी थकान आती है। थकान आने पर यह भी विश्राम चाहती है। इसको अपनी सेज पर जो क्षण भर विश्राम देती है—उसी का नाम है मृत्यु—जिसे मैं यति कहता हूँ।

"जीवन क्या माटी के तन में केवल गति भर देना,
और मृत्यु क्या उस गति को ही क्षण भर यति कर देना।" (विभावरी)

अथवा

"है आवश्यक तो विराम भी
यदि पथ लम्बा और कठिन हो,
पर केवल उतना ही जितने
से पथ श्रम की दूर थकन हो।"

इन तीन सत्यों के अतिरिक्त एक चौथा सत्य भी है—जिसका नाम है रोटी (पेट की भूख)। हृदय की भूख-प्यास जिस प्रकार जीवन-स्थिति के लिये आवश्यक है, उसी प्रकार पेट की भूख भी शरीर-स्थिति के लिये अनिवार्य है। और जिस प्रकार हृदय (प्रेम) के माध्यम से मनुष्य अन्त में विश्व की एकता तक पहुँचता है, उसी प्रकार रोटी के माध्यम से भी हम अन्त में मानव-एकता तक ही पहुँचते हैं। दोनों का लक्ष्य एक है, इसलिये दोनों को मैंने एक प्रेम के अन्तर्गत ही ले लिया है।

जीवन के प्रति जो मेरी दृष्टि है, वह मैंने यहाँ आपके सामने स्पष्ट की है। यह ग़लत है या सही, प्रतिगामी या प्रगतिवादी, यह तो निर्णय आप करेंगे। मैं तो केवल क्षम्य गर्व के साथ इतना ही कहता हूँ कि इस दृष्टिकोण से मुझे अपने जीवन में काफी बल मिला है।

पत्थरों के देश की राजकुमारी

को

विषय-सूची

१

क्या करेगा प्यार वह भगवान को,
क्या करेगा प्यार वह ईमान को,
जन्म लेकर गोद में इन्सान की
प्यार कर पाया न जो इन्सान को।

२

तुम झूम झूम गाओ, रोते नयन हँसाओ,
मैं हर नगर डगर के काँटे बुहार दूँगा !

भटकी हुई पवन है,
सहमी हुई किरन है,
न पता कहीं सुबह का
हर ओर तम गहन है,
तुम द्वार द्वार जाओ, परदे उघार आओ,
मैं सूर्य-चाँद सारे भू पर उतार दूँगा ।
तुम झूम झूम गाओ ।

गीला हरेक आँचल,
टूटी हरेक पायल,
व्याकुल हरेक चितवन,
घायल हरेक काजल,
तुम सेज सेज जाओ, सपने नये सजाओ,
मैं हर कली अली के पी को पुकार दूँगा ।
तुम झूम झूम गाओ ।

विधवा हरेक डाली,
हर एक नीड़ ख़ाली,
गाती न कहीं कोयल,
दिखता न कहीं माली,
तुम बाग़ बाग़ जाओ, हर फ़ूल को जगाओ,
मैं धूल को उठाकर सबको बहार दूंगा।
तुम झूम झूम गाओ।

मिट्टी उजल रही है,
धरती सँभल रही है,
इन्सान जग रहा है,
दुनियाँ बदल रही है,
तुम खेत खेत जाओ, दो बीज डाल आओ,
इतिहास से हुई मैं ग़लती सुधार दूंगा।
तुम झूम झूम गाओ।

कोई नहीं पराया, मेरा घर···

२

कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है।

मैं न बँधा हूँ देश-काल की ज़ंग लगी ज़ंजीर में,
मैं न खड़ा हूँ जाति-पाँति की ऊँची-नीची भीड़ में,
मेरा धर्म न कुछ स्याही-शब्दों का सिर्फ गुलाम है,
मैं बस कहता हूँ कि प्यार है तो घट-घट में राम है,
मुझसे तुम न कहो मंदिर-मस्जिद पर मैं सर टेक दूँ,
मेरा तो आराध्य आदमी, देवालय हर द्वार है।
कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है॥

कहीं रहे कैसे भी मुझको प्यारा यह इन्सान है,
मुझको अपनी मानवता पर बहुत-बहुत अभिमान है,
अरे नहीं देवत्त्व, मुझे तो भाता है मनुजत्त्व ही,
और छोड़कर प्यार नहीं स्वीकार सकल अमरत्त्व भी,
मुझे सुनाओ तुम न स्वर्ग-सुख की सुकुमार कहानियाँ,
मेरी धरती सौ-सौ स्वर्गों से ज़्यादा सुकुमार है।
कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है॥

मुझे मिली है प्यास विषमता का विष पीने के लिये,
मैं जन्मा हूँ नहीं स्वयं-हित, जग-हित जीने के लिये,
मुझे दी गई आग कि इस तम में मैं आग लगा सकूँ,
गीत मिले इसलिए कि घायल जग की पीड़ा गा सकूँ,
मेरे दर्दीले गीतों को मत पहनाओ हथकड़ी,
मेरा दर्द नहीं मेरा है, सबका हाहाकार है।
कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है॥

मैं सिखलाता हूँ कि जिओ औ' जीने दो संसार को,
जितना ज़्यादा बाँट सको तुम बाँटो अपने प्यार को,
हँसो इस तरह, हँसे तुम्हारे साथ दलित यह धूल भी,
चलो इस तरह कुचल न जाये पग से कोई शूल भी,
सुख, न तुम्हारा सुख केवल जग का भी उसमें भाग है,
फूल डाल का पीछे, पहले उपवन का श्रृंगार है।
कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा संसार है॥

प्रेम पथ हो न सूना...

४

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिये
जिस जगह मैं थकूँ, उस जगह तुम चलो।

कब्र-सी मौन धरती पड़ी पाँव पर,
शीश पर है कफ़न-सा घिरा आसमाँ,
मौत की राह में, मौत की छाँह में
चल रहा रात-दिन साँस का कारवाँ,

जा रहा हूँ चला, जा रहा हूँ बढ़ा,
पर नहीं ज्ञात है किस जगह शाम हो ?
किस जगह पग रुके, किस जगह मग छुटे,
किस जगह शीत हो, किस जगह घाम हो,

मुस्कराये सदा पर धरा इसलिये
जिस जगह मैं झरूँ, उस जगह तुम खिलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिये,
जिस जगह मैं थकूँ, उस जगह तुम चलो।

एक दिन काल-तम की किसी रात ने
दे दिया था मुझे प्राण का यह दिया,
धार पर यह जला, पार पर यह जला
बार अपना हिया विश्व का तम पिया,

पर चुका जा रहा साँस का स्नेह अब
रोशनी का पथिक चल सकेगा नहीं,
आँधियों के नगर में बिना प्यार के
दीप यह भोर तक जल सकेगा नहीं,

पर जले स्नेह की लौ सदा इसलिये
जिस जगह में बुझूँ, उस जगह तुम जलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिये
जिस जगह मैं थकूँ, उस जगह तुम चलो।

रोज़ ही बाग़ में देखता हूँ सुबह,
धूल ने फ़ूल कुछ अधखिले चुन लिये,
रोज़ ही चीखता है निशा में गगन—
'क्यों नहीं आज मेरे जले कुछ दिये ?'

इस तरह प्राण ! मैं भी यहाँ रोज़ ही,
ढल रहा हूँ किसी बूँद की प्यास में,
जी रहा हूँ धरा पर, मगर लग रहा
कुछ छिपा है कहीं दूर आकाश में,

छिप न पाये कहीं प्यार पर इसलिये
जिस जगह मैं छिपूँ, उस जगह तुम मिलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिये
जिस जगह मैं थकूँ, उस जगह तुम चलो।

प्रेम का पंथ सूना अगर हो गया
रह सकेगी बसी कौन-सी फिर गली ?
यदि खिला प्रेम का ही नहीं फूल तो
कौन है जो हँसे फिर चमन में कली ?

प्रेम को ही न जग में मिला मान तो
यह धरा, यह भुवन सिर्फ शमशान है,
आदमी एक चलती हुई लाश है,
और जीना यहाँ एक अपमान है,

आदमी प्यार सीखे कभी इसलिये
रात दिन मैं ढलूँ, रात दिन तुम ढलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिये
जिस जगह मैं थकूँ, उस जगह तुम चलो।

५

प्रेम को न दान दो, न दो दया,
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है।

प्रेम है कि ज्योति-स्नेह एक है,
प्रेम है कि प्राण-देह एक है,
प्रेम है कि विश्व गेह एक है,
प्रेमहीन गति, प्रगति विरुद्ध है।
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है॥

प्रेम है इसीलिये दलित दनुज,
प्रेम है इसीलिये विजित दनुज,
प्रेम है इसीलिये अजित मनुज,
प्रेम के बिना विकास वृद्ध है।
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है॥

नित्य व्रत करे कि नित्य तप करे,
नित्य वेद-पाठ, नित्य जप करे,
नित्य गंग - धार में तिरे - तरे,
प्रेम जो न तो मनुज अशुद्ध है।
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है॥

६

तुम डरो न, प्यार करो प्यार करो
प्यार तो सदैव ही पवित्र है !

फ़ूल से मिले कि शूल से मिले,
धार से मिले कि कूल से मिले,
चाहकर मिले कि भूल से मिले,
प्यार तो सदैव ही पवित्र है !

स्वर्ग, नर्क में, महल-मकान में,
भूमि, अन्तिरिक्ष आसमान में,
हाट : बाट, शहर सूनसान में,
प्यार प्राण ! हर जगह पवित्र है !

युद्ध-क्षेत्र हो कि केलि-धाम हो,
धुन्ध धूम हो कि शीत घाम हो,
रात हो कि प्रात हो कि शाम हो,
प्यार प्राण ! हर समय पवित्र है !

चिर कुरूप और रूपवान भी,
मूढ़, मूर्ख, बुद्ध, ज्ञानवान भी,
पशु, मनुष्य, देवता, महान भी,
प्यार जो करे वही पवित्र है !

प्यार है कि सभ्यता सजी खड़ी,
प्यार है कि वासना बँधी पड़ी,
प्यार है कि आँख में शरम जड़ी,
प्यार बिन मनुष्य दुश्चरित्र है !
प्यार तो सदैव ही पवित्र है !

दुश्मन को अपना हृदय ज़रा देकर देखो !

७

यह नफ़रत की बारूद न बिखराओ साथी !
यह युद्धों का ज़हरीला नारा बन्द करो,
जो प्यार तिजोरी-सेफ़ों में है तड़प रहा
उसके बन्धन खोलो, उसको स्वच्छन्द करो !

मृत मानवता ज़िन्दगी माँगती है तुम से
दो बूंद स्नेह की उसके प्राणों में ढालो,
आदम का जो यह स्वर्ग हो रहा है मरघट
जाओ ममता का एक दिया उसमें बालो !

निर्माण घृणा से नहीं, प्यार से होता है,
सुख-शान्ति खड्ग पर नहीं, फूल पर चलते हैं,
आदमी देह से नहीं, नेह से जीता है,
बम्बों से नहीं, बोल से बज्र पिघलते हैं।

तुम डरो न, आगे आओ निज भुज फैलाओ
है प्यार जहाँ, तलवार वहाँ झुक जाती है,
पतवार प्रेम की छू जाये जिस किश्ती को
मँझधार, पार उसको ख़ुद पहुँचा आती है।

जिसके अधरों पर गीत प्रेम का जीवित है
वह हँसकर तूफ़ानों को गोद खिलाता है,
जिसके सीने में दर्द छिपा है दुनियाँ का
सैलाबों से बढ़कर वह हाथ मिलाता है।

कितना ही क्यों न बड़ा हो घाव हृदय में, पर
सच कहता हूँ यह प्यार उसे भर सकता है,
कैसा ही बाग़ी—दुश्मन हो आदमी मगर
बस एक अश्रु का तार क़ैद कर सकता है।

कितना ही ऊबड़-खाबड़ हो रास्ता किन्तु
यह प्यार फ़ूल-सा तुम्हें उठा ले जायेगा,
कैसी ही भीषण अँधियारी हो धुँआ-धुन्ध
पर एक स्नेह का दीप सुबह ले आएगा।

मैं इसीलिये अक्सर लोगों से कहता हूँ,
जिस जगह बँटे नफ़रत, जा प्यार लुटाओ तुम
जो चोट करे तुम पर उसके चूम लो हाथ,
जो गाली दे उसको आशीष पिन्हाओ तुम

तुम शान्ति नहीं ला पाये युद्धों के द्वारा
अब फेंक ज़रा तलवार, प्यार लेकर देखो,
सच मानो निश्चय विजय तुम्हारी ही होगी
दुशमन को अपना हृदय ज़रा देकर देखो।

८

दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिये,
आँज मैं सकूँ जिसे हरेक आँख में अभय,
बाँट मैं सकूँ जिसे समस्त विश्व में सदय,
बाँध क्षुद्र धूल कर सके जिसे न क्रय, न क्षय,
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए ॥

जो बँधे न वृन्त से, न डाल से, न पात से,
जो मुँदे न जो खुले न रात से प्रभात से,
जो थके न जो झुके न धूप-वारि-वात से,
फूल नहीं, फूल का सुवास मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए ॥

घूँट घूँट पी सके घृणा-समुद्र जो अतल,
बूँद बूँद सोख ले सकल विषम - कलुष - गरल,
अश्रु अश्रु बीन ले धरा बने सुखी सकल,
तृप्ति नहीं, चिर अतृप्त प्यास मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए ॥

घेर जो सके समग्र स्वर्ग, नर्क, भू, गगन,
बाँध जो सके सकल करम धरम जनम-मरण,
छू सके जिसे न देश-काल की गरम पवन,
मुक्ति नहीं, मुक्त प्रेम - पाश मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए॥

देवता नहीं, मनुष्य बस मनुष्य बन रहे,
अर्चना न, वन्दना न, द्वेष-मुक्त मन रहे,
स्वर्ग नहीं, भूमि भूमि के लिए शरण रहे,
अमृत नहीं, मर्त्य का विकास मुझे चाहिए।
दीप नहीं, दीप का प्रकाश मुझे चाहिए॥

६

जलाओ दिय पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।

नई ज्योति के धर नये पंख झिलमिल
उड़े मर्त्य मिट्टी गगन-स्वर्ग छूले,
लगे रोशनी की झड़ी झूम ऐसी,
निशा की गली में तिमिर राह भूले,
खुले मुक्ति का वह किरन-द्वार जगमग
उषा जा न पाये निशा आ न पाये।
जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये॥

सृजन है अधूरा अगर विश्व भर में
कहीं भी किसी द्वार पर है उदासी,
मनुजता नहीं पूर्ण तब तक बनेगी
कि जब तक लहू के लिए भूमि प्यासी,
चलेगा सदा नाश का खेल यूँही,
भले ही दिवाली यहाँ रोज़ आये।
जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये॥

मगर दीप की दीप्ति से सिर्फ जग में
नहीं मिट सका है धरा का अँधेरा,
उतर क्यों न आयें नखत सब गगन के
नहीं कर सकेंगे हृदय में उजेरा,
कटेगी तभी यह अँधेरी घिरी जब,
स्वयं धर मनुज दीप का रूप आये।
जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये॥

मूर्ख पुजारी है वह जो कहता...

१०

मूर्ख पुजारी है वह जो कहता है मन्दिर ईश्वर का घर,
मुल्ला भी वह बहक गया जो कहता वह मस्जिद के अंदर,
मन्दिर मस्जिद में ही उनका ईश्वर और खुदा होता तो
मन्दिर में बन सकती मस्जिद, मस्जिद में बन सकता मन्दिर ।

११

खोजने तुमको गया मठ में विकल अरमान मेरा,
पत्थरों पर झुक न पाया पर सरल शिशु-ध्यान मेरा,
जन-जर्नादन की चरण-रज किन्तु जब शिर पर चढ़ाई
मिल गया मुझको सहज उस धूल में भगवान मेरा।

१२

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है !

दीप को रात भर जल सुबह मिल गई
चिर कुमारी उषा की किरन-पालकी,
सूर्य ने चल दिवस भर अगिन-पन्थ पर
रात, लट चूमली चाँद के गाल की,
जिन्दगी में सभी को सदा मिल गया
प्राण का मीत औ' सारथी राह का,
एक मैं ही अकेला जिसे आज तक
मिल न पाया सहारा किसी बाँह का,
बेसहारे हुई अब कि जब ज़िन्दगी
साथ संसार सारा चले—व्यर्थ है !

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है ॥

एक ही कील पर घूमती है धरा,
एक ही डोर से बस बँधा है गगन,
एक ही सांस में ज़िन्दगी क़ैद है
एक ही तार से बुन गया है कफ़न,
इस तरह हर किसी के नयन में यहाँ
एक ऐसी बसी शक्ल ख़ामोश है,
प्यार संसार भर का मिले क्यों न, पर
आदमी को न उसके बिना होश है,
होश ही आज अपना नहीं जब मुझे
फूल बन उर्वशी भी खिले—व्यर्थ है !

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है ॥

नाश के इस नगर में तुम्हीं एक थे
खोजता मैं जिसे आ गया था यहाँ,
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता
तन भटकता कहाँ, मन भटकता कहाँ,
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक
मैं सिसकता रहा शब्द में, गान में,
वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना शव बना
मैं भटकता रहा रोज़ शमशान में,
पर तुम्हीं अब न मेरी पियो प्यास तो
ओठ पर भी हिमालय गले—व्यर्थ है !

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है ॥

फूल से भी बहुत दिन किया प्यार पर
दर्द दिल का कभी मुस्कराया नहीं,
चाँद से भी बहुत मन लगाया, मगर
प्राण को चैन मेरे न आया कहीं,
किन्तु उस रोज़ तुमने पुकारा कि जब
मैं पड़ा था चिता पर, मगर गा उठा,
एक जादू न जाने किया कौन-सा
आग की गोद में अश्रु मुस्का उठा,
औ' मुझे रोशनी अब तुम्हीं दो न, तो—
पास सारे सितारे जलें—व्यर्थ है !

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है ॥

खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मन्दिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया,
ख़ैर पर यह हुई, उम्र की दौड़ में
ख्याल मैंने न कुछ पत्थरों का किया,
पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बाँह डाली कली ने गले में मचल,
एक तस्वीर तेरी लिये किन्तु मैं
साफ़ दामन बचाकर गया ही निकल,
और फिर भी न यदि तुम मिलो तो कहो
जन्म किस अर्थ है, मृत्यु किस अर्थ है !

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है ॥

१३

मुझे न करना याद, तुम्हरा आँगन गीला हो जायेगा !

रोज़ रात को नींद चुरा ले जायेगी पपिहों की टोली,
रोज़ प्रात को पीर जगाने आयेगी कोयल की बोली,
रोज़ दुपहरी में तुमसे कुछ कथा कहेंगी सूनी गलियाँ,
रोज़ साँझ को आँख भिगो जायेंगी कुछ मुरझाई कलियाँ,
यह सब होगा, पर न दुःखी तुम होना मेरी मुक्त-केशिनी !
तुम सिसकोगी वहाँ, यहाँ यह पग बोझीला हो जायेगा !
मुझे न करना याद, तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा ॥

कभी लगेगा तुम्हें कि जैसे दूर कहीं गाता हो कोई,
कभी तुम्हें मालूम पड़ेगा अंचल छू जाता हो कोई,
कभी सुनोगी तुम कि कहीं से किसी दिशा ने तुम्हें पुकारा,
कभी दिखेगा तुम्हें कि जैसे बात कर रहा हो हर तारा
पर न तड़पना, पर न बिलखना, पर न आँख भर-भर लाना तुम
तुम्हें तड़पता देख विरह-शुक और हठीला हो जायेगा !
मुझे न करना याद, तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा ॥

याद सुखद उसकी बस जग में होकर भी जो दूर, पास हो,
किन्तु व्यर्थ उसकी सुधि करना जिसके मिलने की न आस हो,
मैं अब इतनी दूर कि जितनी सागर से मरुथल की दूरी,
और अभी क्या ठीक कहाँ ले जाये जीवन की मजबूरी,
गीत-हंस के हाथ इसलिये मुझको मत भेजना संदेशा,
मुझको मिटता देख, तुम्हारा स्वर दर्दीला हो जायेगा !
मुझे न करना याद, तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा ॥

मैंने कब यह चाहा मुझको याद करो, जग को तुम भूलो ?
मेरी यही रही ख्वाहिश बस मैं जिस जगह झरूँ, तुम फूलो,
शूल मुझे दो जिससे वे चुभ सकें न किसी अन्य के पग में,
और फूल जाओ—ले आओ बिखराओ जन-जन के मग में,
यही प्रेम की रीति कि सब कुछ देता, किन्तु न कुछ लेता है,
यदि तुमने कुछ दिया प्रेम का बन्धन ढीला हो जायेगा !
मुझे न करना याद, तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा ॥

१४

क्या कहा ?—"सत्य बस ब्रह्म और सब मिथ्या है,
यह सृष्टि चराचर केवल छाया है, भ्रम है,
है सपने-सा निस्सार सकल मानव-जीवन,
यह नाम, रूप-सौन्दर्य अविद्या है, तम हैं ?"

मैं कैसे कह दूँ धूल मगर इस धरती को
जब अब तक रोज़ मुझे यह गोद खिलाती है,
मैं कैसे कह दूँ मिथ्या है सम्पूर्ण सृष्टि
हर एक कली जब मुझे देख शरमाती है !

जीवन को केवल सपना मैं कैसे समझूँ
जब नित्य सुबह आ सूरज मुझे जगाता है,
कैसे मानूँ निर्माण हमारा व्यर्थ विफल
जब रोज़ हिमालय ऊँचा होता जाता है।

यह ज्ञान तुम्हीं सोचो समझो परखो जानो
मुझको तो इस मिट्टी का कण-कण प्यारा है,
है प्यार मुझे जग से, जीवन के क्षण-क्षण से
तृण-तृण पर मैंने अपना नेह उतारा है !

मुस्काता है जब चाँद निशा की बाहों में
सच मानो तब मुझ पर खुमार छा जाता है,
बाँसुरी बजाता है कोयल की जब सावन
कोई साँवरिया मुझे याद आ जाता है !

निज धानी चनूर उड़ा-उड़ा कर नई फ़सल
जब दूर खेत से मुझको पास बुलाती है,
तब मेरे तन का रोम-रोम गा उठता है
औ' साँस-साँस मेरी कविता बन जाती है !

तितली के पंख लगा जब उड़ता है वसन्त
तरु-तरु पर बिखराता कुंकुम परिमल पराग,
तब मुझे जान पड़ता कि धूल की दुलहिन का
'अक्षर' से ज्यादा अक्षर है सारा सुहाग।

बुलबुल के मस्त तराने की स्वर-धारा में
जब मेरे मन का सूनापन खो जाता है,
संगीत दिखाई देता है साकार मुझे
तब तानसेन मेरा जीवित हो आता है।

जब किसी गगनचुम्बी गिरि की चोटी पर चढ़
थक-कर फिर-फिर आती है मेरी विफल दृष्टि,
तब वायु कान में चुपके से कह जाती है
"रे किसी कल्पना से है छोटी नहीं सृष्टि।"

कलकल ध्वनि करती पास गुज़रती जब नदियाँ
है स्वयं छनक उठती तब प्राणों की पायल,
फैलाता है जब सागर मिलनातुर बाहें
तब लगता सच एकान्त नहीं, सच है हलचल।

अँधियारी निशि में बैठ किसी तरु के ऊपर
जब करता है पपिहा अपने 'पी' का प्रकाश
तब सच मानो मालूम यही होता मुझको
गा रहे विरह का गीत हमारे सूरदास !

जब भाँति-भाँति के पंख-पखेरू बड़े सुबह
निज गायन से करते मुखरित उपवन - कानन
सम्मुख बैठे तब दिखलाई देते मुझको
तुलसी गाते निज विनय-पत्रिका रामायण।

पतझार एक ही झोंक-झकोरे में आकर
जब नष्ट भ्रष्ट कर देता बगिया का शृङ्गार
तब तिनका मुझ से कहता है बस इसी तरह
प्राचीन बनेगा नव-संस्कृति के लिये द्वार ।

जब बैठ किसी झुरमुट में दो भोले भोले—
प्रेमी खोलते हृदय निज लेकर प्रेम नाम
तब लता-जाल से मुझे निकलते दिखलाई—
देते हैं अपने राम - जानकी पूर्णकाम ।

अपनी तुतली आँखों से चंचल शिशु कोई
जब पढ़ लेता है मेरी आत्मा के अक्षर
तब मुझको लगता स्वर्ग यहीं है आसपास
सौ बार मुक्ति से बढ़कर है बन्धन नश्वर !

मिल जाता है जब कभी लगा सम्मुख पथपर
भूखे - भिखमंगे नंगों का सूना बज़ार,
तब मुझे जान पड़ता कि तुम्हारा ब्रह्म स्वयं
है खोज रहा धरती पर मिट्टी का मज़ार।

यह सब असत्य है तो फिर बोलो सच क्या है--
वह ब्रह्म कि जिसको कभी नहीं तुमने जाना ?
जो काम न आया कभी तुम्हारे जीवन में
जो बुन न सका यह साँसों का ताना-बाना ।

भाई ! यह दर्शन सन्त महन्तों का है बस
तुम दुनियाँ वाले हो, दुनियाँ से प्यार करो,
जो सत्य तुम्हारे सम्मुख भूखा नंगा है
उसके गाओ तुम गीत उसे स्वीकार करो !

यह बात कही जिसने उसको मालूम न था
वह समय आ रहा है कि मरेगा जब ईश्वर
होगी मन्दिर में मूर्त्ति प्रतिष्ठित मानव की
औ' ज्ञान ब्रह्म को नहीं, मनुज को देगा स्वर ।

१५

जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !

जिस दिन तक बगिया में भौंरों की रहे भीड़
उस दिन तक तुम मत आने देना मुझे पास,
जिस दिन तक बुलबुल गाती रहे बहारों को
उस दिन तक मत पूँछना कि मैं क्यों हूँ उदास,
लेकिन जिस दिन पथ पर सपनों की उड़े धूल
तब मुझे बुलाना—मैं चन्दन बन आऊँगा !

जब सूना सूना तुम्हें लगे जोवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

जब गूँथ रहा हो चाँद रात के खुले बाल,
तब याद न करना इस कुटिया अँधियारी को,
मधुऋतु मधुबन में जब सिन्दूर लुटाती हो
बिसरां देना तब इस विधवा फुलवारी को,
लेकिन आकर पतझार तुम्हें जब झकझोरे
तब मुझे बुलान:—मैं सावन बन आऊँगा !

जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

जब तक नर्गिस की पाँति नयन में शरमाये,
तब तक न समझना तुम इन आँखों की भाषा,
मुस्कायें अधरों पर जब तक फूले गुलाब,
तब तक न जानना तुम मैं हूँ कितना प्यासा,
पर जब कोई अंगार कपोलों को चूमे
तब मुझे बुलाना—मैं चुम्बन बन आऊँगा !

जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

हो मठ में जब तक गूँज शंख-घड़ियालों की
मेरी पूजा तब तक तुम ठुकराते रहना,
गीतों के गजरों से जब तक तुम सजे रहो
मेरे आँसू तब तक तुम तड़पाते रहना,
ढह जाये मठ पर जब शृङ्गार बिखर जाये
तब मुझे बुलाना—मैं दर्शन बन आऊँगा !

जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

जब प्यार लुटाने निकलो तुम संसार बीच
मेरे अनाथ मन को तब याद नहीं आना,
वरदान बाँटने जाओ जब तुम दुनियाँ में
मेरे भिक्षुक-सपनों पर ख़ाक उड़ा जाना,
पर जब ठुकराओ प्यार किसी का तुम ज़ग में
तब मुझे बुलाना—मैं पाहन बन आऊँगा !

जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

मेरा मन तो है क़ैद कफ़न के घूँघट में,
तन मरघट के हाथों का एक खिलौना है,
ये मेरी साँसें ही मेरी ज़ंजीरें हैं,
कुछ ज्ञात नहीं किस जगह मुझे कब सोना है,
इस पर भी यदि शृंगार तुम्हें मेरा भाये,
तो मुझे बुलाना—मैं दरपन बन आऊँगा !

जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

१६

तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है, न जल पा रहा है।

भटकती निशा कह रही है कि तम में
दिये से किरन फूटना ही उचित है,
शलभ चीख़ता पर बिना प्यार के तो
विधुर साँस का टूटना ही उचित है,
इसी द्वन्द में रात का यह मुसाफ़िर
न रुक पा रहा है, न चल पा रहा है।
तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है, न जल पा रहा है।

मिलन ने कहा था कभी मुस्करा कर
हँसो फ़ूल बन विश्व भर को हँसाओ,
मगर कह रहा है विरह अब सिसक कर
झरो रात-दिन अश्रु के शव उठाओ,
इसीसे नयन का विकल जल-कुसुम यह
न झर पा रहा है, न खिल पा रहा है।
तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है, न जल पा रहा है।

कहाँ दीप है जो किसी उर्वशी की
किरन-उँगलियों को छुये बिन जला हो ?
बिना प्यार पाये किसी मोहिनी का
कहाँ है पथिक जो निशा में चला हो ?
अचंभा अरे कौन फिर जो तिमिर यह
न गल पा रहा है, न ढल पा रहा है ।

तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है, न जल पा रहा है ।

किसे है पता धूल के इस नगर में
कहाँ मृत्यु वरमाल लेकर खड़ी है ?
किसे ज्ञात है प्राण की लौ छिपाये
चिता में छिपी कौन-सी फुलझड़ी है ?
इसीसे यहाँ राज़ हर ज़िन्दगी का
न छिप पा रहा है, न खुल पा रहा है ।

तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है, न जल पा रहा है ।

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है !

एक साँस मौत के क़रीब है,
एक साँस ज़िन्दगी के पास है,
एक फूल में छिपी हुई बहार,
एक फ़ूल में खिज़ाँ उदास है,

इसलिए विषाद में, विलास में—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है !

एक बार कर रही सिंगार सेज,
एक बार धर रही चिता अँगार,
एक राह आ रही हैं डोलियाँ,
एक राह अर्थियाँ चली हज़ार,

इसलिए पिया के प्रेम-पन्थ पर—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

एक दिया जला कि जल उठी सुबह,
एक दिया बुझा कि रात हो गई,
एक शह लगी कि ढह गया क़िला,
एक शह लगी कि मात हो गई,

इसलिए अनादि हार-जीत में—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

एक हवा चली कि खिल उठा चमन,
एक हवा चली कि सब उजड़ गया,
एक पग उठा कि राह मिल गई,
एक पग उठा कि पथ बिछुड़ गया,

इसलिये मिलन-विरह की बाट में—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

बात कुछ हुई कि हँस पड़े अधर,
बात कुछ हुई कि आँख रो उठी,
बूँद इक ढली कि ढल गया ग़ुबार,
बूँद इक ढली कि दिल भिगो उठी,

इसलिए असंख्य अश्रु-हास ले—

एक पाँव चल रहा अलग-अलग
और दूसरा किसी के साथ है !

एक डाल इस तरह खिली-फली
कि एक एक पात फ़ूल बन गया,
एक डाल इस क़दर मगर लुटी
कि एक एक फ़ूल धूल बन गया,

इसलिये सिंगार में, सँहार में—

एक पाँव चल रहा अलग-अलग
और दूसरा किसी के साथ है !

एक वह लहर उठी समुद्र में
कि खुद-बखुद जहाज़ पार हो गया,
एक वह लहर चली कगार-से
कि नाव के समीप पार खो गया,

इसलिये कगार-धार-पार पर—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है !

एक ईंट पर सधा हुआ महल,
एक ईंट पर खड़ा 'मशान है,
एक बार जी रही हरेक लाश,
एक बार मर रहा जहान है,
इसलिए जनम-मरन के गाँव में—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है !

१८

कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन,
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !

सौ-सौ बार उठा जुड़कर सपनों का मेला,
सौ-सौ बार गया मंज़िल तक प्राण अकेला,
बूंद बूंद घन हुये हज़ारों बार नयन के,
ढहे करोड़ों बार महल चाँदी-कँचन के,
पर है यह इन्सान कि फिर भी जिसके मन में
नीड़ बसाने की नादानी अभी शेष है।
कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन,
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !

छिन छिन क्षीण हो रहा श्वास-कोष जीवन का,
छिन छिन बढ़ता जाता है व्यापार मरण का,
हुये जा रहे टूक टूक सब चाँद - सितारे,
बने जा रहे मरु दिन दिन सागर-सरि सारे,
पर है यह आश्चर्य कि मिट्टी की आँखों में
एक बूंद आँसू का पानी अभी शेष है।
कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन,
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !

'आज', आज का वर्तमान, कल का अतीत है,
और भविष्यत् सिर्फ़ भूत का मूक गीत है,
आता बनकर जन्म, मरण बन जाता हर पल,
बस चुटकी भर ख़ाक ज़िन्दगी भर की हलचल,
लेकिन बुझी बुझी प्राणों की हर धड़कन में
किसी चोट की पीर पुरानी अभी शेष है।
कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन,
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !

१९

इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही !

—एक—

एक ऐसी हँसी हँस पड़ी धूल यह
लाश इन्सान की मुस्कराने लगी,
तान ऐसी किसी ने कहीं छेड़ दी
आँख रोती हुई गीत गाने लगी,
एक नाज़ुक किरन छू गई इस तरह
खुद-बखुद प्राण का दीप जलने लगा,
एक आवाज़ आई किसी ओर से
हर मुसाफ़िर बिना पाँव चलने लगा,
रूप के गाँव का पर मिला छोर यूँ—
देह बढ़ती रही, उम्र ढलती रही ।
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही !

—दो—

एक दिन देखता हूँ कि रूठी हुई
चाँदनी चन्द्रमा से खड़ी दूर है,
एक दिन यह सुना फ़ूल की चोट से
एक पाषाण का दिल हुआ चूर है,
एक दिन आँसुओं ने कहा आँख से
'रो न हम आयँगे कल बदल कर कफ़न',
एक दिन एक बोला शलभ दीप से
'चूम लूँ मैं तुझे तब मुझे कर दफ़न',
पर सुनी, अनसुनी बात ऐसे हुई
रूठ सोया शलभ, लौ मचलती रही ।
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही !

—तीन—

एक दिन कह रही थी, भ्रमर से कली
'ओठ जूठे किये हैं, मुझे तू न छू'
कह रहा था भ्रमर 'सुन अरी बावली
निष्कलुष मैं बनूँ ले मुझे चूम तू'
आ गया एक झोंका तभी उस तरफ़
हिल उठी डाल तो भू, गगन हिल गये,
कुनमुनाई-लजाई कली तो बहुत
आप ही आप लेकिन अधर मिल गये,
अन्त ऐसे हुआ उस मिलन का मगर
दिन सिसकता रहा, रात खलती रही ।
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही !

—चार—

एक दिन ज़िन्दगी की कड़ी धूप में
दो पखेरू मिले मुक्त नभ के तले,
कुछ न बोले, न डोले न कुछ बात की
हो गया प्यार लेकिन नयन जब मिले,
ओठ ज्यों ही उठे तो नियति हँस उठी,
आँधियाँ चल पड़ीं, तम बरसने लगा,
छुट गया हाथ से हाथ भींगा हुआ,
गालियाँ मार संसार हँसने लगा,
और फिर यूँ कटी वह विरह की निशा
स्नेह बुझता रहा, याद जलती रही।
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही !

—पाँच—

एक दिन एक आया पथिक द्वार पर
टुक रुका, एक दो घूंट पानी पिया,
पथ-सफ़र का लिया साथ सामान सब
एक फेंकी विवश दृष्टि औ चल दिया,
उस दिवस से मगर एक तस्वीर सी
अश्रु की भीति पर रोज़ खिंचने लगी,
रँग भरने लगे जागकर रात, दिन,
मोतियों से गली-गैल सिंचने लगी,
किन्तु पूरा हुआ चित्र वह इस तरह
रँग हुये एक सब, छवि बदलती रही।
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही !

—छः—

एक दिन एक तारा गिरा टूटकर
एक उजड़े हुये नीड़ ने रख लिया,
फूल ने मुस्कराकर तभी यह कहा—
'यह बुझा है दिया क्यों इसे दिल दिया?'
बोलने तब लगा नीड़ का एक तृण
'हर दुखी को दुखी से सदा प्यार है,
आँसुओं के लिये गोद बस धूल है,
फूल को तो धरे शीश संसार है!'
किन्तु झगड़ा खतम इस तरह यह हुआ
फूल झरता रहा, धूल खिलती रही।
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही!

—सात—

एक दिन एक बोली पिटी गोट यूँ—
'एक मौक़ा अगर तू मुझे और दे,
मान सच यह कि बाज़ी बदल दूँ अभी
हार को जीत से, जीत को हार से',
सुन खिलाड़ी प्रथम बार झिझक-ज़रा
फिर बदल गोट वह चाल चलने लगा,
जब लगी अक़्ल सब तब बहुत देर में
खेल का कुछ तराज़ू बदलने लगा,
पर हुआ खेल वह भी खतम इस तरह
गोट पिटती रही, चाल चलती रही।
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही!

यँही यूँही···

२०

भोर हुआ,
धूप चढ़ी,
शोर हुआ,
साँझ बढ़ी,
यूँही यूँही एक दिन निकल गया।

प्राण तपे,
प्यास जगी,
मेघ घिरे,
झड़ी लगी,
यूँहो यूँही हिय-हिमाद्रि गल गया।

स्नेह चुका,
साँस थकी,
तिमिर झुका,
ज्योति बिकी,
यूँही यूँही एक दीप जल गया।

रूप हँसा,
रास रचा,
मिलन सजा,
विरह बचा,
यूँही यूँही एक स्वप्न छल गया।

जन्म रोया,
मृत्यु हँसी,
आयु लुटी,
धूल बसी,
यूँही यूँही बस मनुष्य ढल गया ।

आदमी है मौत···

२१

आदमी है मौत से लाचार,
जी रहा है इसलिये संसार।

बूंद बनने के लिये बेसब्र घन है,
धूल चुनने के लिये व्याकुल सुमन है,
ढल रहा है चाँद निशि की बाहु में,
गोद में तम को लिये चंचल किरन है,
प्राण ! नश्वर है सकल शृङ्गार,
इसलिये सौंदर्य है सुकुमार।
आदमी है मौत से लाचार,
जी रहा है इसलिये संसार॥

बज रही सरगम मरण की भू, गगन में,
है चिता की राख लिपटी हर चरण में,
हँस रहा हर डाल पर पतझर समय का,
एक विष की बूंद है सबके नयन में,
प्राण ! जीवन क्या, प्रणय क्या प्यार,
एक आँसू और एक अंगार।
आदमी है मौत से लाचार,
जी रहा है इसलिये संसार॥

धूल को मरघट सदा प्यारा लगा है,
अमृत को तन-घट सदा कारा लगा है,
चल रहा है गीत आँसू की डगर में,
मृत्यु से हारा सदा जीवन - समर में,
मत कहो रण - क्षेत्र है संसार,
हारता आया मनुज हर बार ।
आदमी है मौत से लाचार,
जी रहा है इसलिये संसार ॥

२२

यह प्रवाह है, यह न रुका है, यह न रुकेगा।

आने दो अवरोध पर्वतों की काया धर,
लगने दो गिरि-चट्टानों की हाट बाट पर,
उठने दो भूचाल आँधियों के आँगन से,
झरने दो उल्काओं की बरसात गगन से,
यह न मौसमी जल गड्ढों में जो बँध जाये,
यह प्रवाह है, यह न रुका है, यह न रुकेगा।

कुछ परवाह नहीं जो अम्बर में हलचल है,
चिन्ता क्या जो सम्मुख मुरदों का दल बल है,
चीख़ रहा विध्वंस, ढह रह संस्कृति का गढ़,
मानवता की लाश रक्त में पड़ी रही सड़,
यह न नाश का दूत, थके जो इस बस्ती में,
यह विकास है, यह न थका है, यह न थकेगा।

मुट्ठी में भूकम्प, शीश पर मेरु उठाये,
नयनों में निर्माण, कण्ठ में राग बसाये,
एकाकी पाथेयहीन तन, मन चिर जर्जर,
स्वर्ग छीन लाने को जो बढ़ रहा निरन्तर,
उसे झुकाने, उसे मिटाने की सोचो मत,
वह मनुष्य है, वह न झुका है, वह न झुकेगा,
वह भविष्य है, वह न मिटा है, वह न मिटेगा,
वह विकास है, वह न थका है, वह न थकेगा,
वह प्रवाह है, वह न रुका है, वह न रुकेगा।

आदमी को प्यार दो...

२३

सूनो सूनी ज़िन्दगी की राह है,
भटकी भटकी हर नज़र निगाह है,
राह को सँवार दो,
निगाह को निखार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।
रोते हुये आँसुओं की आरती उतार दो।

तुम हो एक फ़ूल कल जो धूल बन के जायेगा,
आज है हवा में कल ज़मीन पर ही आयेगा,
चलते वक्त बाग़ बहुत रोयेगा—रुलायेगा,
ख़ाक के सिवा मगर न कुछ भी हाथ आयेगा,
ज़िन्दगी की ख़ाक लिये हाथ में,
बुझते-बुझते सपने लिये साथ में,
रुक रहा हो जो उसे बयार दो,
चल रहा हो उसका पथ बुहार दो।
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।

ज़िन्दगी यह क्या है——बस सुबह का एक नाम है,
पीछे जिसके रात है औ' आगे जिसके शाम है,
एक ओर छाँह सघन, एक ओर घाम है,
जलना-बुझना, बुझना-जलना सिर्फ़ जिसका काम है,
न कोई रोक-थाम है,
ख़ौफ़नाक-ग़ारों-बियाबान में,
मरघटों के मुरदा सुनसान में,
बुझ रहा हो जो उसे अँगार दो,
जल रहा हो जो उसे उभार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।

ज़िन्दगी की आँखों पर मौत का ख़ुमार है,
और प्राण को किसी पिया का इन्तज़ार है,
मन की मनचली कली तो चाहती बहार है,
किन्तु तन की डाली को पतझर से प्यार है,
क़रार है,
पतझर के पीले-पीले वेश में,
आँधियों के काले-काले देश में,
खिल रहा हो जो उसे सिंगार दो,
झर रहा हो जो उसे बहार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।

प्राण एक गायक है, दर्द एक तराना है,
जन्म एक तार है जो मौत को बजाना है,
स्वर ही रे! जीवन है, साँस तो बहाना है,
प्यार एक गीत है जो बार बार गाना है,
सब को दुहराना है,

सॉँस की सिसक रही सितार पर,
आँसुओं के गीले गीले तार पर,
चुप जो हो उसे ज़रा पुकार दो,
गा रहा हो जो उसे मल्हार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।

एक चाँद के बग़ैर सारी रात स्याह है,
एक फ़ूल के बिना चमन सभी तबाह है,
ज़िन्दगी तो ख़ुद ही एक आह है कराह है,
प्यार भी न जो मिले तो जीना फिर गुनाह है,
धूल के पवित्र नेत्र-नीर से,
आदमी के दर्द, दाह, पीर से,
जो घृणा करे उसे प्रहार दो,
प्यार करे उस पै दिल निसार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।
रोते हुये आँसुओं की आरती उतार दो॥

२४

तुम मिलो मुझे मँझधार बीच,
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

मैं भी देखूँ सागर की गहराई क्या है,
मैं भी जानूँ लहरों की तरुणाई क्या है,
उर्वशी कहाँ है इस बडवानल के तल में,
है अमृत कहाँ इस क्षार भरे नीले जल में,

तुम मिलो मुझे मँझधार बीच
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

तुम सावन बनकर नयनों के सँग चले-चलो,
तुम धड़कन बनकर प्राणों के सँग हिलो-मिलो,
बन ताप तपाओ कंचन-सा तन-मन छिन-छिन,
बन गीत कण्ठ के गीले आँगन में मचओ,

तुम मिलो मौन-मनुहार बीच,
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

तुम मधुऋतु में खिल पड़ो कुसुम सम गंध मदन,
तुम पतझर में झर पड़ो पात सम पीत-बरन,
तुम तम में तैरो तन्द्रा की लहरों पर तिर,
तुम किरनों में झूलो चंचल-मन, चपल-चरन,

तुम मिलो ज्योति-अँधियार बीच,
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

तुम अश्रुभरी आँखों में डूबो-उतराओ,
तुम सूने घर-द्वारों पर दीप जला आओ,
सुख-दुख की माला गूँथ, गूँथ दो तुम जीवन,
तुम मधु-विष दोनों एक पात्र में भर लाओ,

तुम मिलो अश्रु-अंगार बीच
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

जब थकूँ बनो तुम गति मेरे विथकित पग की,
जब चलूँ बनो तुम मंज़िल तब मेरे मग की,
जब झुकूँ बनो तुम तब मेरी पूजन-प्रतिमा,
जब ऊठूँ बनो तुम नभ-सीमा मेरे दृग की,

तुम मिलो प्राप्ति-परिहार बीच,
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

निर्जीव धरा पर बरसाओ तुम अमृत-धार,
कर्दम, कल्मष पर गिरो बज्र सम महाकार,
विशृङ्खल मानवता छन्दाकृति में बदलो,
जड़ता-पशुत्व-वैषम्य करो तुम तार-तार,

तुम मिलो सृजन-संहार बीच,
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

मैं बाँध सकूँ तुमको जीवन की हलचल में,
सुन सकूँ तुम्हारा शब्द भीड़-कोलाहल में,
मैं पूज सकूँ तुमको पथ पर चलते-चलते,
मैं देख सकूँ तुमको दिशि-दिशि, नभ, जल, थल में,

तुम मिलो सकल संसार बीच,
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

२५

रात के कज्जल-तिमिर में झिलमिलाती
प्रात की कंचन-किरन-सी कौन तुम हो ?

श्याम-पट में स्नात-स्मित-शशि-मुख छिपाये,
जुगुनुओं के दीप अंचल में जलाये,
दामिनी - दुति - ज्योति - मुक्ताहार पहने,
इन्द्रधनुषी कंचुकी तन पर सजाये,
बूँद के घुंघरू बजती पल निमिष चल
लोचनों में अश्रु-घन-सी कौन तुम हो !
प्रात की कंचन-किरन-सी कौन तुम हो !!

आ रहीं तुम श्वास लौटी आ रही है,
गा रहीं तुम भग्न संसृति गा रही है,
झुक गई है मृत्यु जीवन की शरण में
चेतना बन देह बिखरी जा रही है,
नैश-तम को ज्योति का वरदान देती
मरण में जीवन-वरण-सी कौन तुम हो !
प्रात की कंचन-किरण-सी कौन तुम हो !!

कौन हो तुम श्वास में सरगम बनी-सी,
गरल के घट में अमृत-मधु की कनी-सी,
नाश में निर्माण, सुख-शृङ्गार की श्री,
स्वप्न में सत की सरल छायातनी सी,
चरण की गति, पंथ की यति, सृष्टि की कृति
विश्व में कारण-करण-सी कौन तुम हो !
प्रात की कंचन-किरण-सी कौन तुम हो !!

झर रहे शत शत हिमालय अग्नि-कण से,
स्वाति चातक पी रहे प्यासी तपन से,
एक दुर्बल मौन में संगीत सारा
बँध गया अमरत्व नश्वर एक क्षण से,
वेदना में मधुर स्वीकृति - सी किसी की
विरह के पथ पर मिलन-सी कौन तुम हो !
प्रात की कंचन-किरण-सी कौन तुम हो !!

प्राण से परिचित, नयन से चिर अपरिचित,
मुखरता में मौन चिर, चिर मौन मुखरित,
ध्यान में वन्दिनि, अवन्दिनि धारणा में,
शब्द में सीमित, स्वरों में चिर असीमित,
भृकुटि में लय-सृष्टि, अधरों में अमृत-विष
अचित में चेतन-अतन-सी कौन तुम हो !
प्रात की कंचन-किरन-सी कौन तुम हो !!

२६

एक बार यदि अपने मदिर मदिर अधरों से
छू लो मेरे तृषित अधर मदिरांगमयी तुम,
सच कहता हूँ हँस-हँसकर मैं
जग भर का
विष पी जाऊंगा !

मैं सोया था किसी कफ़न के नीचे थककर
तुमने मुझे जगा, मुझ में संगीत जगाया,
कोई चिता छिपाये बैठी थी मेरा तन
तुमने मुझे चुरा मिट्टी के हाथ बिकाया,
अब जागी यह प्यास मुझे पी जायेगी जो
यह न बुझी है यह न बुझेगी जीकर, मरकर
सौ-सौ बार अमृत बरसा पर यह अतृप्त है,
सौ-सौ बार गरल पीकर भी यह जागृत, पर—
एक बार यदि अपने अरुण अरुण अधरों से
पी लो मेरी प्यासी प्यास अनंगमयी तुम
सच कहता हूँ कोटि कोटि
वरदान तृप्ति
के ठुकराऊंगा ।

मुझको चारों ओर खड़ी है मौत समेटे
पल पल पर है समय साँप-सा फन फैलाये,
शिर पर धरी हुई पचीस वर्षों की लाशें
युग-पैरों में नियति लौह-ज़ञ्जीर पिन्हाये,
इस पर भी पर बन्द ज़ुबाँ करने को मेरी
लाखों ठेकेदार धरम के खड़े कमर कस,
अपने दुख में रोना दूर, न गा सकता हूँ
मैं कितना मजबूर यहाँ कितना मैं बेबस ?
एक बार पर अपनी नरम नरम बाँहों में
बाँध मुझे लो क्षण भर यदि निर्बन्धमयी तुम
सच कहता हूँ मैं अपनी क्या
युग की मुक्ति
बुला लाऊँगा ।

मैं दुनिया भर में भूला भटका भरमाया
पर न मिला कोई जो दुर्बलता दुलराता,
शूल हँसाकर, फ़ूल रुलाकर गये हजारों
किन्तु न कोई ऐसा जो दुख-दर्द बँटाता,
अमरों की आरती उतारी, करी अर्चना
गये दिवस पर एक बार भी लौट न आये,
जाकर बसा गगन की चन्द्र-घाटियों में भी
पर आँखों के अश्रु वहाँ भी सूख न पाये,
एक बार पर अपनी नमित नमित पलकों में,
मेरे अश्रु सुला लो यदि आनन्दमयी तुम !
सच कहता हूँ मैं अमरों के
कर से अमृत
छिना लाऊँगा ।

अपने दुख का गीत लिखा मैंने जब रोकर
सुखी जगत ने हँसकर खूब मज़ाक उड़ाया,
सुख का गीत रचा जब अपना दर्द दबाकर
निर्दय आलोचक ने कलम-कुठार चलाया,
सोच रहा अब एक गीत ऐसा गाना मैं
जिसको सब जग, सब युग-काल रहें दुहराते,
इससे पकड़ा है जीवन का अंचल लेकिन
सब युग वाले शब्द नहीं मुझको मिल पाते,
एक बार पर सजल सजल करुणा-कज्जल निज,
मेरी स्याही में घोलो शब्दांगमयी तुम !
सौ सौ जीवन - गीत
मरण की छाती पर
मैं लिख आऊँगा ।

भूखी धरती अब···

२७

भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है !

छिपते जाते हैं सूरज, चाँद-सितारे सब
मुरदा मिट्टी अम्बर पर चढ़ती जाती है
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।

कंकालों की जुड़ रही भीड़ चौराहे पर,
फिर से बननेवाला है कोई वज्रबान,
बिक रहे प्राण,बिक रहे शीश,बिक रही मौत,
फिर से जगने को हैं सोये मरघट मसान,
हर ओर मची है होली ख़ून-पसीने की,
हर ओर अँगारों की खेती लहराती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है ।।

हैं काँप रहीं मन्दिर-मस्जिद की मीनारें
गीता - कुरान के अर्थ बदलते जाते हैं,
ढहते जाते हैं दुर्ग द्वार, मकबरे-महल
तख्तों पर इस्पाती बादल मँडराते हैं,
अँगड़ाई लेकर जाग रहा इन्सान नया
ज़िन्दगी क़ब्र पर बैठी बीन बजाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है ॥

मासूम लहू की गंगा में आ रही बाढ़,
नादिरशाही सिंहासन डूबा जाता है,
गल रही बर्फ़ सी डालर की काली कोठी,
एटम को भूखा पेट चबाये जाता है,
निकला है नभ पर नये सबेरे का सूरज
हर किरन नई दुलहिन सी सेज सजाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है ॥

पड़ रही समय की भौंहों में सलवटें-शिकन,
विंध्याचल करवट शीघ्र बदलनेवाला है,
उठनेवाली है आग समुन्दर के दिल से
हिमवान किसी का खून उगलनेवाला है,
हर एक हवा का रुख कुछ बदला-बदला है,
हर एक फ़िज़ाँ में गरमी सी दिखलाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है ॥

तुम कफ़न चुराकर बैठ गये जा महलों में
देखो ! गान्धी की अर्थी नंगी जाती है,
इस रामराज्य के सुघर रेशमी दामन में
देखो सीता की लाज उतारी जाती है,
उस ओर श्याम की राधा वह वृन्दाबन में
आलिंगन-चुम्बन बेच पेट भर पाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है ॥

तुमने नवयुग के विश्वासों को बहकाया
भूखे के मुँह तक से तुम कौर छीन लाये,
ब्लैक-ट्रेड किया तुम माँ की चोली तक से
आज़ादी तक धर चोर-बज़ारों में आये,
मानवता के क़ातिलो ! मगर यह याद रहे
क़ातिल की ही तलवार उसे खा जाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है ॥

सृष्टि हो जाये···

२८

सृष्टि हो जाये सुरभिमय इसलिए
कंटकों में फ़ूल मुस्काता रहा।

जल रही थी हर दिशा अंगार बन,
आग में शिर से नहाई थी पवन,
खाक-सो खामोश लेटी थी धरा,
अजगरों को छेड़ देता था गगन,
नाश में मधुमास लाने को मगर
कंटकों में फ़ूल मुस्काता रहा।

आँधियाँ आयीं पहाड़ उछालतीं,
बदलियाँ छायीं समुद्र संभालतीं,
चाँद, सूरज, तारकों के शव उठा
बिजलियाँ टूटी चिताएँ बालतीं,
पर सभी ही आफ़तों पर मुस्करा—
कंटकों में फ़ूल मुस्काता रहा।

सामने थी लाश उपवन की पड़ी,
बेकफ़न अर्थी भ्रमर की थी खड़ी,
थी धरी चट्टान जलती ओठ पर,
गूँथती थी आँख लोहू की लड़ी,
फूँकने को प्राण लेकिन धूल में—
कंटकों में फ़ूल मुस्काता रहा।

चाँद को खोकर हँसा है कब गगन
सूर्य से बिछुड़ी कहाँ थिरकी किरन !
तोड़ आकर्षण सभी एकाकिनी
है न चल सकती धरा भी एक क्षण,
पर अकेला, सब तरह बिछुड़ा हुआ—
कंटकों में फ़ूल मुस्काता रहा।

हो धरा मुखरित, दिशा हर गा उठे,
सृष्टि में मधुमास फिर लहरा उठे,
हँस उठें सूनी सजल आँखें सभी
मर्त्य मिट्टी से अमृत शरमा उठे,
इसलिए पाकर घृणा भी विश्व से—
विश्व पर मैं प्यार बरसाता रहा।

सृष्टि हो जाये सुरभिमय इसलिये
कंटकों में फ़ूल मुस्काता रहा।

२६

"३० जनवरी—एक आदेश"

है तीस जनवरी आज, न स्याही माँग कलम,
कुछ लिखना है तो आँसू कागज पर उतार
गाने का है गर चाव तोड़ दे यह वीणा
बन्दूक उठा, गोली निकाल कर भर मल्हार।

ओ चित्रकार! तस्वीर देवता की न खींच
जो मनुज मर गया है उसको दे रूप-रंग
यमुना तट पर सो रहा मसीहा जो अपना
उसको जीवित कर, भर उसमें यौवन उमंग।

ओ शिल्पी! मूर्ति न गढ़ युद्धों को देख उधर
गोली खाकर ले रहा प्रेम आख़िरी श्वास
लोहे के कपड़े पहने शान्ति बिलखती है
ढोते-ढोते बारूद थक गया है विकास।

इतिहासकार! यह पृष्ठ अंधेरे का न जोड़
आनेवाली सदियाँ काली हो जायेंगी
ओ कवि! इस नफ़रत को मत दे अपनी ज़ुबान
लाशें जो कुछ जी रहीं, न वे जी पायेंगी।

वैज्ञानिक ! ऐटम बम्ब फेंक मत और, बना—
है नागासाकी अब तक मुरदों का बज़ार
टैंकों के नीचे अब तक पड़ी तड़पती है
वह देख, कोरिया बीच एशिया की बहार।

मत शंख बजा ओ मठ, मस्जिद आज़ान न दे !
कर रहा शहीदों का शहीद मरणाभिषेक
आहिस्ता बोल अरे, ओ मज़हब की किताब !
हो गया आज खामोश विश्व भर का विवेक।

सब उठो चलो उस राजघाट पर आज, जहाँ
बुन रही कफ़न कल्पना, चिता रच रहे छन्द
है मूक जहाँ सौ-सौ कवियों के महाकाव्य
आनन्द स्वयं ही जहाँ हो रहा निरानन्द।

पर ठहरो अपने रक्त-सने इन हाथों से
उसकी समाधि मत छुओ, न दो पूजापाधी
सिंहासन छोड़ो अगर वन्दना करनी है
पथ पर जाओ मर रहे जहाँ लाखों गाँधी।

मन आज़ाद नहीं है…

३०

तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है !

सचमुच आज काट दीं हमने
जंजीरें स्वदेश के तन की,
बदल दिया इतिहास, बदल दी
चाल समय की, चाल पवन की,

देख रहा है रामराज्य का
स्वप्न आज साकेत हमारा,
ख़ूनी कफ़न ओढ़ लेटी है
लाश मगर दशरथ के प्रण की,

मानव तो हो गया आज—
आज़ाद दासता बन्धन से पर,
मज़हब के पोथों से ईश्वर का जीवन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है ॥

हम शोणित से सींच देश के
पतझर में बहार ले आये,
खाद बना अपने तन की—
हमने नवयुग के फूल खिलाये,

डाल डाल में हमने ही तो
अपनी बाहों का बल ढाला,
पात - पात पर हमने ही तो
आँसू के मोती बिखराये,

क़ैद, कफ़स सय्याद सभी से
बुलबुल आज स्वतन्त्र हमारी
ऋतुओं के बन्धन से लेकिन अभी चमन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है ॥

यद्यपि कर निर्माण रहे हम
एक नई नगरी तारों में,
सीमित किन्तु हमारी पूजा
मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारों में,

यद्यपि कहते आज कि हम सब—
एक हमारा एक देश है,
गूंज रहा है किन्तु घृणा का
तार बीन की झन्कारों में,

गङ्गा - ज़मज़म के पानी में
घुली - मिली ज़िन्दगी हमारी
मासूमों के गरम लहू से पर दामन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा लेकिन मन आज़ाद नहीं ॥

एक कारवाँ के झण्डे के
नीचे आज हमारी गति है,
एक ओर पग, एक ओर मुख
और एक ही ओर प्रगति है,

फिर भी जाने क्यों हममें से
कुछ आगे हैं, कुछ पीछे हैं,
कुछ अथ पर ही खड़े और कुछ
वहाँ जहाँ यात्रा की इति है,

आज हमारा पथ स्वतन्त्र—
मंज़िल स्वतन्त्र, पग भी स्वतन्त्र पर,
भेद-भाव से संचालक का संचालन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है॥

आज पा लिया हमने फिरसे
अपनी दिल्ली का सिंहासन
कोहनूर से आज हमारे राष्ट्र—
मुकुट का ज्योतित कण कण,

लाल क़िले पर लहराता है
देश - निशान तिरंगा प्यारा,
और कर रहा विश्व हमारे
हिन्द - हिमालय का अभिनन्दन,

चले जा रहे तूफ़ानी गति—
से हम पाँव धरे रवि, शशि पर,
काबा, काशी की मिट्टी से किन्तु चरण आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है॥

३१

क्या है यह तूफ़ान अरे मैं
ख़ुद आँधी बनकर चलता हूँ !

मेरी छाती से टकराकर
टूट चुकी लाखों चट्टानें,
मेरी आँखें छूकर जाने
कितने सावन - मेघ सुखाने

सौ सौ ज्वालामुखी कंठ में
मेरी प्यास दबाये बैठी
कोटि कोटि रेगिस्तानों को
मेरी साँसें गयीं सुलाने,

आज अगर पग जर्जर है
मग बीहड़ है तो क्या चिन्ता है?
काँटा चुभता जहाँ वहीं मैं—
वहीं फ़ूल बनकर खिलता हूँ !

क्या है यह तूफ़ान अरे मैं
ख़ुद आँधी बनकर चलता हूँ!!

—दो—

चाँद बहुत रोया था जब
मैंने मुस्काना छोड़ दिया था,
कोयल कूक न पाई थी जब
मैंने गाना छोड़ दिया था,

अंजन रात न आँज सकी थी,
दिवस न धूप पहन पाया था,
जिस दिन मैंने रूठ धरा पर
आना-जाना छोड़ दिया था,

मुझे मिटाने, मुझे बुझाने का—
प्रयत्न है व्यर्थ तुम्हारा
युग युग से तम की छाती पर
मैं सूरज बनकर जलता हूँ !

क्या है यह तूफ़ान अरे मैं
खुद आँधी बनकर चलता हूँ !!

—तीन—

सौ सौ बार चिताओं ने
मरघट पर मेरी सेज बिछाई,
सौ सौ बार धूल ने मेरे
गीतों की आवाज़ चुराई,

लाखों बार कफ़न ने रोकर
मेरा तन-शृङ्गार किया, पर—
एक बार भी अब तक मेरी
जग में मौत नहीं हो पाई,

मैं जीवन हूँ, मैं यौवन हूँ
जन्म-मरण है मेरी क्रीड़ा,
इधर विरह सा बिछुड़ रहा हूँ,
उधर मिलन सा आ मिलता हूँ

क्या है यह तूफ़ान अरे मैं
ख़ुद आँधी बनकर चलता हूँ!!

३२

परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया।

युग युग से निर्जीव शिला सी लेटी थी मिट्टी की काया,
पथराई थीं चपल पुतलियाँ, ओठों पर हिम था चढ़ आया,
लेकिन उस दिन धड़कन बन छू गया हृदय जब प्यार तुम्हारा
विरह बिलखकर अश्रु बन गया मिलन विहँस कर हास बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥

एक वायु के झोंके सा था भटक रहा जग-जीवन सारा,
कहीं न कोई नीड़, कहीं विश्राम, न कोई संग-सहारा,
पर जिस दिन अतृप्त संसृति की सूनी प्यासी युग बाहों में—
बिखर गये तुम धरा बन गई, सिमिट गये आकाश बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥

तुम सोये सो गई निशा, तुम जागे जगा विहान-सबेरा,
सूरज भाल-सिंदूर बन गया, अंजन कन हो गया अँधेरा,
अधरों पर जो काल फूल था, खिला वही जीवन उपवन में
झरझर कर पतझार बन गया, खिलखिल कर मधुमास बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥

मुरदा था साहित्य, कलाओं पर थी मौन उदासी छाई,
जब तक ओ मेरे करुणाकर ! तुमको मेरी याद न आई,
आधी रात मगर जिस दिन तुम मेरे लिये सिसककर रोये
सब कवियों के काव्य रच गये, सब जग का इतिहास बन गया ।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया ।।

तुमने क्या कर दिया कि गाने लगा मृत्तिका का यह ढेला,
लगा दिया क्यों इस नदिया पर इतनी नौकाओं का मेला,
तुम क्या हो, कैसे हो—है कुछ ज्ञात नहीं, बस यही पता है—
जन्म दे गया मोह तुम्हारा, और मरण संन्यास बन गया ।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया ।।

निराकार ! जब तुम्हें···

३३

निराकार! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया ।

युग युग से मैं बना रहा था मूर्ति तुम्हारी अकल-अलेखी,
आज हुई पूरी तो मैंने शक्ल खड़ी अपनी ही देखी,
लेकिन इससे भी बढ़कर अपराध कर गई पूजन-वेला.
तुम्हें सजाने चला फूल जो, मेरा ही श्रृंगार हो गया ।
निराकार! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया ॥

निशि दिन के ताने-बाने पर बुना काल ने चीर तुम्हारा,
पहनाने जब चला तुम्हें तो वह बन गया शरीर हमारा,
और एक दिन जब आई बरसात हो गया मैला अंचल
मैंने तुम्हें पुकारा रोकर पर मुखरित संसार हो गया ।
निराकार! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया ॥

गन्ध तुम्हारी थी मैं तो बस बनकर सुमन चुरा लाया था,
रूप तुम्हारा था मैंने तो केवल दर्पण दिखलाया था,
पर यह दुनियाँ भी क्या है कैसा अनर्थ हो रहा यहाँ पर
श्रेय तुम्हारा तुम्हें न मिलकर मेरा यश-विस्तार हो गया ।
निराकार! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया ॥

जो भी नाम दिया तुमको वह मेरा ही परिचय बन-बैठा,
जिस थल तुम्हें बिठाया मेरा ही वह प्राण-हृदय बन बैठा,
अर्घ्य चढ़ा जो भी तुम पर बन गया अश्रु मेरी आँखों का
जो भी तुम्हें देखने दौड़ा मुझे देख बलिहार हो गया।
निराकार! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया॥

सुधि की ले पतवार, सजाकर चिर जर्जर साँसों की नैया,
पाल आँधियों के फैलाकर, तूफ़ानों को बना खिवैया,
तुम्हें खोजता फिरता था मैं एक लहर ऐसी पर आई
डूब गई तृण-तरी, किन्तु मैं सारा सागर पार हो गया।
निराकार! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया॥

मनुष्य की एवरेस्ट विजय पर···

३४

मनुष्य की एवरेस्ट विजय पर

आख़िर मुट्ठी भर धूल पहुँच ही गई वहाँ
जा सके न पाँव जहाँ इतिहास पुराणों के
आख़िर धरती के बेटे ने गूँथ ही दिये
बरफ़ीले बाल पहाड़ों के, चट्टानों के।

सिन्दूर चूम ही लिया धरा के माथे का
आख़िर श्रम के फ़ौलादी ख़ून-पसीने ने
हिम की शहज़ादी को मुँदरी पहना ही दी
आख़िर कुछ पानीवाले एक नगीने ने।

कोमल गुलाब से नाज़ुक ओठों के गाने
गाने ही पड़े मौन-मुरदा सुनसानों को,
अन्त में मुश्किलों को देनी ही पड़ी राह
ज़िद्दी मानव के आवारा अरमानों को।

मंज़िल को लाखों बार अन्धेरे का नक़ाब
पहिनाया आ आकर आँधी-तूफ़ानों ने,
बर्फ़ ने उढ़ाया कफ़न रास्ते को छिन छिन,
सूरज को निगल लिया क़ातिल शमशानों ने।

काँटों - कंकड़ों, झाड़ - झँखाड़ों ने रोका
रोका बूँदों ने, बादल ने, बरसातों ने.
रोका प्यासे नयनों की करुणा पुकारों ने,
रोका सूने प्रातों ने, गीली रातों ने।

पत्नी के मस्तक के सुहाग ने मान किया
टेरा झुर्रियों भरी जननी की छाती ने
बच्चों की किलकारी ने डाली गले बाँह,
दी शपथ पिता की बुझती जीवन बाती ने।

खाती पछाड़ ममता चीखती रही पीछे,
स्नेह ने सिसकियाँ भर-भर अंचल झकझोरा,
वात्सल्य मचलता रहा एक चुमकारी को,
प्रेम ने बिलख कर बाँध समुन्दर का तोड़ा।

लेकिन जाने वाला कैसे रुक सकता था,
उसको चलने का अपना क़ौल निभाना था,
जीकर मरकर कैसे भी हो तो उसको तो बस
अपनी मिट्टी को मंज़िल तक पहुँचाना था।

जब बैठ गई थी मौत सामने मुँह खोले
तब सहसा एक हवा ऐसी भी आई थी,
जो दूर देश से किसी नयन के सावन की
आँसूवाली बौछार उड़ा ले आयी थी।

तब घूम गई थी नयनों के आगे क्षण भर
पत्नी की लजवन्ती सुहागवली बेंदी,
कानों में भी तब रोया था चूड़ी का स्वर,
रँग गई धरा को थी सावनवाली मेंहदी।

क्षण भर के लिए पाँव तब पथ पर ठिठका था,
मन भी जा किसी नयन के जल में डूबा था,
तन ने भी चलने से इन्कार कर दिया था
नयनों का हर सपना सूने से ऊबा था।

लेकिन था साहस एक अरे साथी जिसने
छोड़ा न साथ उन साथ छोड़नेवालों में,
बढ़ता ही गया आख़िरी दम तक मंज़िल पर
बन मरहम लगता रहा राह के छालों में।

औ' कर ही दिया अन्त में लक्ष्य-भेद पूरा
तन को कर तीर, कमान बना व्याकुल मन को,
अवरोधों की प्रत्यंचा खींच प्रगति-गति से
ले गया शिखर के शिर पर आखिर रज-कण को।

मानव के साहस धन्य कि तूने दिखा दिया—
तू चुम्बन से सूरज को शरमा सकता है
तू पायल पहिना सकता है तूफ़ानों को,
पाषाणों को साँसों से नरमा सकता है।

तूने यह बतला दिया कि पौरुष के आगे
मुश्किल को अपनी ही मुश्किल पड़ जाती है,
हिम्मत गर हारे नहीं मुसाफ़िर अपनी तो
खुद मंज़िल उसको बढ़कर गले लगाती है।

तूने निश्चित कर दिया कि बहुत शीघ्र भू पर
देवों का सुन्दर स्वर्ग उतारा जायेगा,
तू ने संकेत कर दिया वह दिन दूर नहीं
जब विजय मृत्यु पर भी मानव पा जायेगा।

पर ठहर, गर्व का मुकुट न पहिना गौरव को
बस यहीं-यहीं तेरे गिर जाने का भय है
कर सका न प्राप्त विजय खुद पर ही तो तेरी
यह प्रकृति-विजय रे सबसे बड़ी पराजय है !

३५

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही ।

हाट मिट्टी ने लगाकर साँस की
रात दिन बेचा-खरीदा प्राण को,
उम्र भर की यह मगर सौदागरी
बस कफ़न ही दे सकी इन्सान को,
देह का हक़दार मरघट बन गया,
छीन कर उछ्वास ले भागा पवन,
आग सारी मोल ले ली सूर्य ने
बन अभावों का गया गाहक गगन,
अश्रु वे जिनका न दाम चुका कहीं
हर निशा झरती रही, आ हर ऊषा चुनती रही ।

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही ॥

—दो—

एक दिन बैठा समुन्दर तीर पर
सुन रहा था बुलबुले की मैं कथा,
एक काग़ज की दिखी कश्ती तभी
थी खड़ी जिसमें पहाड़ों की व्यथा,
बोझ इतना धर, मुझे अचरज हुआ
चल रही है किस तरह यह धार में
हँस कहा उसने "चलाती चाह है,
आदमी चलता नहीं संसार में।"
बस तभी से उम्र की यह बाँसुरी
जन्म बन बजती रही, बनकर मरण घुनती रही।

फ़ूल की सारी कहानी धूल से,
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही॥

—तीन—

पंथ पर उस रोज़ जब ठोकर लगी
पाँव पंथ को गालियाँ देने लगा,
ठीकरा दोषी जिसे समझा गया
इस तरह कह सिसकियाँ लेने लगा—
"चोट तुझ से कम न आई है मुझे
मैं नहीं, तू है सबब इस भूल का,
खोलकर तो आँख खुद चलता नहीं
नाम है बदनाम करता शूल का"
मैं तभी से देखता हूँ आज तक
ठोकरों खाता रहा पग राह सर धुनती रही।

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही॥

—चार—

एक तिनके ने किसी तूफ़ान के
साथ उड़कर जब लिया आकाश छू,
एक उजड़ी शाख से उसने कहा :
"देख मैं किस ठौर हूँ, किस ठौर तू"
शर्म से डाली झुकी, पर क्रुद्ध हो
वायु बोली "व्यर्थ यह अभिमान है,
वक़्त का ही है करिश्मा यह अरे !
जो यहाँ वह, तू वहाँ मेहमान है।"
पर उसी दिन से सदा मैंने सुना
नीड़ तृण जब जब बना बिजली कफ़न बुनती रही।

फ़ूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही ॥

—पाँच—

छेड़ बैठा एक दिन मैं फ़ूल को
व्यर्थ ही तू कंटकों में हँस पड़ा,
विश्व को खुशबू लुटाकर भी सदा
अन्त में तू पत्थरों पर जा चढ़ा,
वह हँसा बोला : कि खुद को अन्य-हित
दान करना ही अरे अमरत्व है,
देवता के शीश चढ़ दिखला दिया
श्रेष्ठतर देवत्व से मनुजत्व है,
बस इसी से रात दिन कवि की क़लम
पा घृणा भी विश्व में गुन प्रेम का गुनती रही।

फ़ूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही ॥

नसेनी

३६

[नसेनी, निसैनी, निश्रेणी, अधिरोहिणी=ऊपर चढ़ने का साधन यानी सीढ़ी। नसेनी जीवन का एक रूपक है। दो बाँस—मन और बुद्धि हैं। तीन डंडे (सीढ़ियाँ) जीवन के तीन पन क्रमश. बचपन, यौवन और बुढ़ापा हैं। आँगन जहाँ से हम इस आयुरूपी नसेनी पर चढ़ना आरम्भ करते हैं, जन्म का प्रतीक है और छत जहाँ पहुँचकर हमारी यह चढ़ाई खतम हो जाती है और जहाँ जाकर अन्त में हम सो जाते हैं, मृत्यु का प्रतीक है। कविता में आया हुआ 'घुन' दुख का प्रतीक है। घुन बाँस, लकड़ी आदि को लग जाता है तो वे नष्ट हों जाते हैं। इन संकेतों को ध्यान में रखकर पाठक 'नसेनी' कविता को पढ़ेंगे।]

दो बाँस, तीन डंडों से बनी नसेनी यह
जो खड़ी सहन का जोड़ रही छत से नाता,
धरती-आकाश बने जब से तबसे इसपर
हर एक यहाँ चढ़-उतर, उतर-चढ़ता जाता !

आँधियाँ घिरीं तूफ़ान चले, टूटे पहाड़
बदला जग, बदली सदियाँ, बदले सिंहासन,
पर अब तक बदल नहीं पाया है क्षण भर को
इस नई-पुरानी सीढ़ी का संसृति-शासन !

कोई आँगन में, कोई पहली सीढ़ी पर
कोई हो खड़ा दूसरी पर पछताता है
पग धरने को है कोई विकल तीसरी पर
कोई छत पर जाकर निज सेज बिछाता है,

अचरज होता है कैसे बस दो बाँसों पर
है सधी सृष्टि इतनी विशाल, इतनी भारी !
कैसे केवल घुन लगे तीन इन डंडों पर
चढ़ उतर रही है युग-युग से दुनियाँ सारी !

है यह भी एक प्रश्न मैं पूछ रहा खुद से
क्या सबका छत पर जाना यहाँ जरूरी है ?
आना है क्या अनिवार्य सभी का आँगन में ?
क्या एक नसेनी सिर्फ़ ज़िन्दगी पूरी है ?

उत्तर देता आकाश कि चढ़ना ही जीवन
औ' मृत्यु उतरने का ही एक बहाना है,
है जन्म-मरण बस तीन सीढ़ियों की दूरी
सबको ऊपर जाना है, नीचे आना है।

३७

मैं सोच रहा हूँ अगर तीसरा युद्ध छिड़ा,
इस नई सुबह की नई फ़सल का क्या होगा,
मैं सोच रहा हूँ गर ज़मीन पर उगा खून,
मासूस हलों की चहल-पहल का क्या होगा ?

यह हँसते हुए गुलाब, महकते हुए चमन,
जादू बिखराती हुई रूप की यह कलियाँ,
यह मस्त झूमती हुई बालियाँ धानों की,
यह शोख, सजल, शर्माती गेहूँ की गलियाँ।

गदराते हुए अनारों की यह मन्द हँसी,
यह पैंगे बढ़ा-बढ़ा अमियों का इठलाना,
यह नदियों का लहरों के बाल खोल चलना,
यह पानी के सितार पर झरनों का गाना।

मैनाओं की नटखटी, ढिठाई तोतों की,
यह शोर मोर का, भौंर भृङ्ग की यँह गुनगुन,
बिजली की कड़क तड़क, बदली की चटक मटक
यह जोत जुगुनुओं की, यह झींगुर की झुनझुन।

किलकारी भरते हुए दूध से यह बच्चे,
निर्भीक उछलतो हुई जवानों की टोली,
रति को शरमाती हुई चाँद सी यह शकलें,
संगीत चुराती हुई पायलों की बोली।

आल्हा की यह ललकार, थाप यह ढोलक की,
सूरा मीरा की सीख, कबीरा की बानी,
पनघट पर चपल गगरियों की यह छेड़छाड़,
राधा की कान्हा से छुप-छुप आनाकानी।

क्या इन सब पर खामोशी मौत बिछा देगी,
क्या धुन्ध-धुआँ बनकर सब जग रह जायेगा ?
क्या कूकेगी कोयलिया कभी न बगियां में,
क्या पपिहा फिर न पिया को पास बुलायेगा ?

मैं सोच रहा युग जो इतिहास लिख रहा है
क्या रक्त घुलेगा उसकी सादी स्याही में ?
क्या लाशों के पहाड़ पर सूरज उतरेगा,
क्या चाँद सिसकियाँ लेगा ध्वंस तबाही में ?

क्या खिज़ां चाट लेगी शबाब इन फ़ूलों का,
क्या धूप अन्धेरे को दासी हो जायेगी,
क्या क्रान्ति पहन लेगी जंजीरें सोने की,
क्या शान्ति मरघटों में छिपकर सो जायेगी ?

क्या पी जायेगा रेगिस्तान नर्मदा को,
क्या गंगा का सैलाब भाप बन जायेगा ?
झुक जायेगा क्या शीश हिमालय योगी का,
विन्ध्याचल में पतझार दुबारा आयेगा ?

मैं सोच रहा—जो फूल रहा खेतों में उस—
बचपन को गोद मिलेगी क्या संगीनों की ?
मिटकर मिट्टी के सर पर जो धर रहा ताज
उस श्रम को उम्र मिलेगी टैंक मशीनों की ?

जो अभी-अभी सिन्दूर दिये घर आई है,
जिसके हाथों की मेंहदी अब तक गीली है,
घूंघट के बाहर आ न सकी है अभी लाज,
हल्दी से जिसकी चूनर अब तक पीली है,

क्या वह अपनी लाड़ली बहन साड़ी उतार,
जाकर बेचेगी निज चूड़ियाँ बज़ारों में ?
जिसकी छाती से फूटा है मातृत्व अभी,
वह माँ क्या दफ़नायेगी दूध मज़ारों में !

क्या गोली की बौछार मिलेगी सावन को,
क्या डालेगा विनाश झूला अमराई में ?
क्या उपवन की डालों में फूलेंगे अँगार,
क्या घृणा बजेगी भौरों की शहनाई में ?

असहाय बुढ़ापा तड़पेगा क्या मरघट में
बारूद करेगी क्या श्रृंगार जवानी का ?
क्या मानवता पर विजयी दानवता होगी,
क्या होगा अन्त पुराना नई कहानी का ?

चाणक्य, मार्क्स, एंजिल, लेनिन, गाँधी, सुभाष,
सदियाँ जिनकी आवाज़ों को दुहराती हैं,
तुलसी, वर्लिज, होमर, गोर्की, शाह, मिल्टन,
चट्टानें जिनके गीत अभी तक गाती हैं।

मैं सोच रहा क्या उनकी क़लम न जागेगी,
जब झोंपड़ियों में आग लगाई जायेगी
करवटें न बदलेंगी क्या उनकी क़ब्रें जब—
उनकी बेटी भूखी पथ पर सो जायेगी ?

जब घायल सीना लिये एशिया तड़पेगा,
तब बालमीक का धैर्य न कैसे डालेगा ?
भूखी कुरान की आयत जब दम तोड़ेगी,
तब क्या न ख़ून फिरदौसी का कुछ बोलेगा ?

सुन्दरता की जब लाश सड़ेगी सड़कों पर,
साहित्य पड़ा महलों में कैसे सोयेगा ?
जब क़ैद तिजोरी में रोटी हो जायेगी
तब क्रान्ति - बीज कैसे न पसीना बोयेगा ?

हँसिये की जंग छुड़ाने में रत हैं किसान,
है नई नोक दे रहा मजूर कुदाली को,
नभ बसा रहा है नये सितारों को बस्ती
भू लिये गोद में नये ख़ून की लाली को।

बढ़ चुका बहुत आगे रथ अब निर्माणों का
बम्बों के दलबल से अवरुद्ध नहीं होगा,
है शान्ति शहीदों का पड़ाव हर मंज़िल पर
अब युद्ध नहीं होगा, अब युद्ध नहीं होगा।

जीवन-जल !

३८

रह चुकी बहुत बरसात क़ैद में मेघों की
उसको ज़मीन पर अब उतारना ही होगा,
शरमीले नभ के सूरज चाँद सितारों को
पानी का यह घूँघट उघारना ही होगा।

निर्जीव पड़े 'खलिहान', खेत दम तोड़ रहे
हैं सिसक रहे बन, बाग कराह रहे सारे
हो गये पीलिया से पीले सब पेड़ पात
चर गई लुओं की लपटें चरागाह प्यारे।

हल की हिलकी बंध रही, हिचकता है हँसिया
विधवा खुरपी, असहाय, अनाथ कुदाली है,
है साँस टूटती मर्द जवान हथौड़े की
बिछुये उतारती नये धान की बाली है।

सूखे से हैं बीमार कुएँ, वापी, तड़ाग
प्यासे बैठे पनघट पर गीत गगरियों के
गश खाकर लेटी हैं खामोश नहर-नदियाँ
हैं ढेर लगे तट पर कंकाल ठठरियों के।

फूलों की लाशों पर खाते भौंरे पछाड़,
मुरदा तितलियाँ कफ़न श्रोढ़े हैं कलियों का,
चढ़ श्राया मलय-समीरन को काला बुखार
सब ख़ून तपेदिक चूस गई पथ-गलियों का।

हैं फेन डालते बैल, रँभाती हैं गायें
दौड़ते फिर रहे बछड़े सब बौराये से,
कुत्ते - बिल्ली, तोता - मैना, कोयल - कौये
श्राकाश देखते सब टकटकी लगाये से।

श्राने दो शीघ्र धरा पर सावन की फुहार
श्रन्यथा समय की प्यास सिन्धु बन जायेगी
यदि जल न मिला तो सत्य मान श्रो श्रासमान !
यह मिट्टी शोणित के सैलाब बुलायेगी।

नीची हो जाती है चोटियाँ पहाड़ों की
जब प्यास तड़प कर श्रपना शीश उठाती है,
धोने को पाँव विकल हो उठते हैं सागर
जब वह निज रेगिस्तानी नज़र घुमाती है।

उसकी मुट्ठी में बन्द पड़े श्राँधी-श्रन्धड़
पग में करवट लेती हलचल भूचालों की,
साँसों में चिनगारियाँ हज़ारों श्रकुलातीं
श्रोठों पर क्रान्ति, करों में माल मशालों की।

श्रब भी सँभाल ले होश ! हवा को देख ज़रा
जंजीर खोल दे शीघ्र ज़िन्दगी के जल की
श्रब भी है समय छोड़ सिंहासन श्रंबर का
श्राज ही श्राज की सिर्फ़ न,कर चिन्ता कल की।

यह जीवन-जल, है आसमान का नहीं मूढ़ !
धरती ने दिया उधार, धरा का यह धन है
तेरा नभ में ही इसे रोक रखने का प्रण
तेरे विनाश का सबसे पहला कारण है।

ज़्यादा दिन तक रह सकती नहीं धरा प्यासी
छल टूटेगा पानी के पहरेदारों का
चल नहीं सकेगी साज़िश और सितारों की
रह नहीं सकेगा सूना चमन बहारों का।

तू उसे किसी भी ऊँचाई पर करे क़ैद
बहने को तो पर जल नीचे ही आयेगा,
उतनी ही और तेज़ होगी उसकी फुहार
जितना ही ऊँचा उसे बसाया जायेगा।

यह बादल भाप-धुयें के गुब्बारे हैं बस
इनके बल का अभिमान स्वयं को छलना है
धरती की एक फूँक से ही उड़ जायेंगे
बस ज़रा देर है किसी हवा का चलना है !

लो वह आई पुरवाई, छाई वह बहार,
वह चमकी बिजली, वह मोरों ने किया शोर,
वे लगे झूमने खेत, थिरकने लगे बाग,
वह कली जी गई, गली हो गई वह विभोर।

वह गाने लगी आम की डाल-डाल झूला,
वह लाल लजा हो गई कुमारी कोयलिया,
वह नची बैल की घण्टी, वह छमकी पायल
वह मस्त बजाने लगा मुरलिया सांवलिया।

बौछार पड़ी वह, भींग गई वह नई बहू,
वह बादल गरजा, वह साजन नें गही बाँह,
वे जुगुनू चमके, किलक उठे वे ग्वाल बाल,
वह कजली बोली, वह बिरहा कर उठा 'आह'।

रे ! बाँध सका है कौन समय के सावन को
वह एक साथ लाखों स्वर में लहराता है
जो उसे क़ैद करता है, बादल के समान
मिट्टी पर गिर कर ख़ुद मिट्टी हो जाता है।

३६

कैंची से काँटों की तो क्रान्ति कतर डाली,
यह फ़ूलों का विद्रोह कौन बल रोकेगा ?
आ रही सुरभि की आँधी जो हर उपवन में,
पतझार कौन-सा है जो इसको टोकेगा ?

रे ! गन्ध नहीं बाँधी जा सकती ताक़त से,
वह तूफ़ानों के बाल खोल लहराती है;
गाती है जब वह बैठ चिता की लपटों में,
मरघट की मिट्टी तक से क्रान्ति उगाती है !

कोमल हैं कलियाँ और पंखुरियाँ नाज़ुक हैं,
घायल कर सकती खुशबू किन्तु पहाड़ों को;
गुदगुदा जगा सकती मुर्दा चट्टानों को,
तलवार थमा सकती आँसू की धारों को !

गरमा देती है सर्द बर्फ़ के सीने को,
असमय जब कोई फ़ूल कहीं मुरझाता है;
हल की नोकों की धार तेज़ कर देती है,
जब खून ज़मीनों पर इतिहास बिछाता है !

जब कभी खोलती है वह अपने पवन-पंख,
लोहे की दुनियाँ सौरभ से भर जाती है;
टैंकों की छाती पर हँस उठते फूल-पात,
बारूद कली की बाँहों में शरमाती है!

चेरी के ओठों पर सुर्खी दौड़ती उधर,
नर्गिस के गालों पर इस ओर ललाई है;
उस दिशा खिल रहे हैं बिजली के लाल फूल,
इस दिशा अँगारों पर बहार बौराई है!

चम्पा, गुलाब, जूही, बेला, केतकी, कमल,
सबके हाथों में परिमल की पिचकारी है;
माली हो जा हुशियार कि तेरे तन-मन से,
होली खेली जाने की अब तैयारी है!

यह रँगों का जो वस्त्र बुना है धरती ने,
तेरी फ़ौलादी कैंची काट न पाएगी;
भूले से भी पड़ गई अगर तुझ पर फुहार,
यह इस्पाती सलाख कागज़ हो जाएगी!

मत इसे क़ैद कर इन चाँदी के महलों में,
बागी घर की ही दीवारें हो जाएँगी;
मत हाथ बढ़ा इसके छूने को ओ पागल!
दुश्मन कर की ही तलवारें हो जाएँगी!

तू धूल न इस पर फेंक, सीख बस यह इससे—
किस भाँति विश्व में मधुऋतु लाया जाता है;
कैसे विनाश पर विजयी होता है विकास,
किस तरह धूल में फूल खिलाया जाता है!

कैसे यह विष-वैषम्य मिटेगा दुनियाँ से,
कैसे समता का स्वर्ण सबेरा आएगा ?
कैसे मिल की चिमनी का धुँआ साफ़ होगा,
कैसे किसान निज हल को ताज पिन्हाएगा ?

४०

सभ्यता कहाँ आ गई ? कहाँ है खड़ा विश्व ?
जा रहा है किधर गति-रथ विज्ञान-कलाओं का ?
किस दिशि उन्मुख इतिहास ? दे रहा क्या विकास ?
क्या शोर समय का है ? क्या ज़ोर हवाओं का ?

क्या यही सभ्यता का वह सुन्दर सुखद स्वर्ग ?
है पड़ा जहाँ पग-पग पर मुरदों का पड़ाव,
बिक रहा जहाँ नारीत्व रजत के टुकड़ों पर
फूलों के शव पर जहाँ शृगालों का जमाव !

क्या यही कला की चिर अनमोल अजन्ता है ?
मकड़ी - मकड़ों ने जहाँ तान रक्खे जाले
घोंसले बने हैं जहाँ उलूकों - गिद्धों के
अजगर, बिच्छू, साँपों के जहाँ बोल बाले ।

यह जलते महल - मकान, तड़पते गली - गाँव,
यह भूख, भूखमरी, सूखा - बाढ़, अकाल - त्रास,
यह ध्वस्त धरा, यह बम्ब धुएँ से घायल नभ,
विज्ञान इसी को कहता क्या मानव विकास ?

सम्मुख लहराता है लोहू का अतल सिन्धु
इतिहास यहीं तक बस क्या चलकर आया है ?
मानव मानव के बीच घृणा की बन्दूकें
क्या यही प्रगति अब तक मज़हब कर पाया है ?

बाइबिल के स्वर्ण सफों पर गोली के अक्षर
क्या क्राइस्ट, शेक्सपियर, शेली का यही देश ?
कर में ऐटम, मस्तक में युद्धों के नक्शे,
लिंकन, वाशिंगटन, इलियट का क्या यही वेश ?

क्या वाल्मीकि का यही तपोवन पावन है ?
सीता की साड़ी जहाँ उतार रहा सोना,
क्या यही सूर का वृन्दावन मनभावन है ?
राधा से जहाँ ज़माना करता अनहोना।

गाँधी का देश यही ? सुभाष की यही भूमि
है क़ैद जहाँ आज़ादी सेफ - तिजोरी में ?
वेदों - उपनिषदों गीता का क्या यही मर्म
हो जाय आदमी बन्द नाज की बोरी में ?

मैं सोच रहा हूँ इस गति से चलकर ज़मीन
किस ओर आदमी की किस्मत ले जायेगी ?
ऐसे ही गर विज्ञान चाटता रहा लहू
दुनियाँ सारी कितने दिन ख़ैर मनायेगी ?

करती है जब विद्रोह प्रकृति होकर अधीर
आदमी स्वयं तब अपनी मौत बुलाता है
जब बल अज़माता है निज पौरुष निर्बल पर
तब उसका ही निर्माण उसे खा जाता है।

अब भी है समय नहीं कुछ ज्यादा देर हुई
लोहे के यह बोझीले वस्त्र उतारो तुम
आँखों से यह सोनें का सुरमा करो दूर
ले प्यार आँख में भू की ओर निहारो तुम !

सारे कंठों से एक साथ मिलकर गाओ
वह गीत कि जो सबके गीतों को गाता है
जिसकी लय तान अमर है, कभी न टूटी है,
वह गीत—जिसे जग कहता धरती माता है ।

यह हृदय है...

४१

मत इसे समझो खिलौना प्राण-प्रेयसि !
यह हृदय है, यह हृदय है, यह हृदय है,
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है !

यह किसी की क़ब्र का बुझता दिया है,
मृत्यु ने शृङ्गार ख़ुद जिसका किया है,
स्नेह इसका जल चुका कब का न जाने,
रक्त निज पीकर अभी तक यह जिया है,
आँधियाँ इसके बुझाने को झुकी हैं,
चूमने को लौ खड़ा अंधड़ अभय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है॥

अंक में इसकी अनल मुस्का रही है,
आँख में कारी बदरिया छा रही है,
बन्द अधरों में मरुस्थल की पिपासा,
क्षुब्ध बुलबुल कण्ठ में अकुला रही है,
गीत में इसके किसी की याद रोती,
और आहों में थकी सोती प्रलय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है॥

देवता ख़ुद, पर किसी का यह पुजारी,
जीत कर यह हारने वाला खिलाड़ी,
दान करने के लिये सर्वस्व अपना—
माँगता जो भीख यह ऐसा भिखारी,
यह स्वयं मंज़िल किसी की, पर मुसाफ़िर,
ख़ुद पराजित पर किसी की यह विजय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है ।।

साँझ इसके पंथ पर दीपक जलाती,
रात इसकी सेज पर सपने सजाती,
है चढ़ाती फूल इस पर मुग्ध ऊषा,
और गाकर गीत कोयलिया जगाती,
सृष्टि का सम्राट् यह, फिर भी किसी के—
चल चरण पर लोटता इसका प्रणय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है ।।

फूल पर मुस्कान इसकी नाचती है,
बादलों से आँख इसकी झाँकती है,
कह रहे तारे इसी की ही कहानी,
पीर पपिहे में इसी की काँपती है,
प्यार के दो बोल सुनने के लिए पर
यह किसी के सामने चिर मौनमय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है ।।

छू रहा है हाथ इसका ही गगन को,
श्वास इसका ही सहज थामें पवन को,
बन्द आँसू में इसी के सिन्धु सौ सौ,
खोजती है मुक्ति इसके ही चरण को,
चूमने को किन्तु फिर भी पग किसी के—
यह सदा आराधना में लीन-लय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है ।।

टूटता यदि यह कभी जाने, अजाने,
टूट जाते सृष्टि के सपने सुहाने,
विश्व में पतझार यह आता भयानक,
मौन हो जाते सकल गाने-तराने,
बाढ़ बह आती धरा पर आँसुओं की
डूब जिसमें विश्व क्या जाता समय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है॥

क्योंकि यह अनमोल वह हीरा सुहासिन!
खो जिसे सम्राट् भी निर्धन अकिंचन,
और पाकर भिक्षु भी जिस को निमिष में,
है बसा सकता धरा पर स्वर्ग-नन्दन,
चाहतीं तो खूब तुम खेलो इसी से—
तोड़ मत देना यही बस एक भय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है॥

४२

सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम शरण ही।

दीप अम्बर के बुझाकर विश्व में नित प्रात आता,
छीन कर जीवन धरा का घन गगन में मुस्कराता,
कर हज़ारों घर तिमिरमय एक जलता दीप सुख का
एक ढलता अश्रु तब जब ज्वाल में जल प्राण जाता,
सृष्टि का संहार करता सृष्टि का नूतन सृजन ही।
सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम शरण ही॥

यामिनी के अश्रु से धुलती कुसुम-कलि की सुघरता,
अश्रु बनकर ही सदा झरती नयन से प्रीति, कविता,
एक गिरता अश्रु जब बनकर समर्पण पूर्णता का—
मौन हाहाकार कर पाषण पूजा का पिघलता,
निर्बलों का बल सदा है एक दुर्बल अश्रु-कण ही।
सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम शरण ही॥

घोर तम की ही दिशा से ज्योति पहली फूटती है,
दग्ध उर की आग से ही धार जल की छूटती है,
चिर - निराशा से सदा होती उदय आशा सुनहली,
वासना में साधना की नींद सहसा टूटती है,
मुक्ति - पथ निर्देश करता विश्व - बन्धन का चरण ही।
सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम शरण ही॥

४३

प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु-प्यास ही है।

प्यास ही वह है कि जिससे विश्व के मधु में मधुरता,
प्यास ही—जिससे निखरती प्राण-प्याले की सुघरता,
दग्ध उर की प्यास ही वह जो उपेक्षित हो जगत से
है गरल को भी सदा ललकारती बनकर-अमरता,
मृत्यु को ललकारती जो क्रुद्ध दुख की साँस ही है।
प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु-प्यास ही है॥

प्यार ही वह छाँह में जिसको हृदय का ताप पलता,
वह शलभ जिसके प्रणय-बलिदान से युग-दीप जलता,
चिर-विवश कवि के सजल दो आँसुओं का हास ही वह
विश्व के दुख का विकल ज्वालामुखी जिसमें मचलता,
पर मचलती मुक्ति जिसको वह प्रणय-भुज-पाश ही है।
प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु-प्यास ही है॥

एक सुख की साँस ही वह जो अमरता को लजाती,
अश्रु की ही बूंद है वह जो न मरु में सूख पाती,
एक अन्तिम श्वास ही वह जो प्रतिध्वनि बन चिता की
दे चुनौती नाश को नैराश्य की छाती हिलाती,
सत्य को जो दे चुनौती स्वप्न का विश्वास ही है।
प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु-प्यास ही है॥

श्री अरविन्द की सात कविताओं के अनुवाद

दिव्य सुमन : Rose of God का रूपान्तर

४४

नभ-नीलम पर कुंकुम की शुभ रेखा सम अंकित, दिव्य सुमन !
आनन्दोत्पल ! आग्नेय मधुर ! चेतन-सत्-सप्त-सदन रंजन !
वर्णनातीत के प्रेम-पुष्प, हे चिर रहस्यमय मृदु कलिके !
मानव-मानस में धधक उठो, हे चमत्कार, हे ज्योति-शिखे !
अस्तित्व शिखर पर परम ज्ञान-विज्ञानोदय के गंध-श्वास !
हे ज्योति कुसुम, चिर दिव्य-दृष्टि-अन्तस्थमर्म, शाश्वत प्रकाश !
पाहुन मंगल वेला के शुभ, हे महाकालशीर्षस्थ सूर्य !
भूतल के मानस में उतरो, हे हिरण्यगर्भ मधुगन्ध तूर्य !
हे चिर अनन्त के अरुण-ओज-बल-मूर्तिमन्त, आनन्द कुसुम !
हे शक्ति सुमन, हीरक आभा से भेद निशा-तम घन दुर्दम !
हो दीप्त मनुज संकल्पों में आयोजन पूर्ण करो अभिनव !
प्रतिमा अमर्त्य हे अमरित की, हे चेतन के चिर ज्ञानोद्भव !
हे दिव्योत्पल, शुभ दिव्य-काम-भावना अवतरित स्वर्ण-श्याम !
जीवन प्रसून ! शतदल सज्जित, शोभायुत ध्वनि-स्वर-वर्ण-धाम !
अनुपम मधुमय छन्दाकृति में, बदलो यह मानव-मर्त्य-देह !
भू-स्वर्ग एक हो, काल विजित-मनु-सन्तति मृत्युञ्जय अजेय !
आनन्द कुसुम ! शाश्वत छवि पर आनन्दरक्ति सदृश शोभित !
हे प्रेम-पुष्प, अग्निल-प्रदीप्त, श्री-दीप्त, चेतनान्तर-मणि-दुति !
मानस-ईप्सा से जाग उठो, है सिसक रही जो जड़ाक्रान्त !
सौन्दर्यानन्द विचुम्बित जग-जीवन हो शाश्वत ज्योति-प्रान्त !

वृक्ष और आत्मा 'ट्री' कविता का अनुवाद

४५

स्वर्गानुरक्त, सैकत-तट पर तरु खड़ा एक
नभ ओर भुजाओं सी शाखाएँ फैलाता।
हो विफल किन्तु जड़ धरती के आकर्षण से
ऊपर न मृत्तिका की माया से उठ पाता।
यह है आत्मा, मानव स्वरूप, जिसकी शाश्वत स्वर्गिक उड़ान
हैं नीचे रोके हुए खड़े, रजपाश-बद्ध मन, देह प्राण।

जीवन और मरण : 'लाइफ एण्ड डैथ' का अनुवाद

४६

जीवन-मरण, मरण-जीवन दो शब्द युगों से
भरमा रहे बुद्धि जग की, दीखते विरोधी,
कर उन्मुक्त अचिन्त्य सत्य चिर मानस-सम्मुख
खुले युगों के छिपे हुए सब पृष्ठ प्रबोधी।
जीवन है संक्षिप्त मृत्यु यदि, स्मय न शेष है,
जन्म-मरण का, मरण-जन्म का छद्मवेश है।

निमन्त्रण : Invitation का हिन्दी रूपान्तर

दिशि-दिशि गर्जित, ऋतु-घन, प्रलय-प्रभंजन झन-झन
किन्तु शिखर से शिखर-शिखर—मैं बढ़ता जाता,
कौन चलेगा साथ, चढ़ेगा कौन गहन - गिरि,
हिमखण्डों, जल - घूर्णावर्त्तों पर मुस्काता ?

मैं न तुम्हारे नगरों की सीमा में सीमित,
बन्द नहीं मैं घर की दूषित प्राचीरों में,
मेरे शिर पर मेरे प्रभु का नील गगन है,
खड़ा हुआ मैं मुक्त आँधियों की भीड़ों में।

खेल रहा एकान्त संग मैं निज प्रदेश में
दुख, दुर्दिन, दुर्भाग्य - विपति को मित्र बनाये,
कौन पवन - प्रक्षालित जो इस दूर विजन में
आकर मुक्त स्वतन्त्र दिवस - निशि - वर्ष बिताये ?

मैं स्वतन्त्र सम्राट् पर्वतों तूफ़ानों का
स्वाभिमान - स्वातन्त्र्य - शक्ति - चेतना अमर वर
प्रिय हो जिसे विपत्ति, दृढ़वती, पुण्यकृती जो
सँग वह मेरे रहे राज्य में मेरे चलकर।

विजय गीत : [Triumph Song of Trichanku]

४८

मैं न मरूँगा ।
जब आत्मा इस मर्त्य गेह से थक जायेगी,
और चिता की लपटों का भोजन होगा तन,
पर तब तो यह भवन जलेगा, किन्तु नहीं मैं !
उस पिंजड़े को छोड़ मिलेगा मुझे विशाल व्योम का कोना,
क्रूर मरण के आलिंगन को धोखा देकर मेरी आत्मा,
दूर बहुत हो जायेगी भूखी कब्रों से ।
रात्रि सूर्य को अपनी ठंडी गहराई में छिपा रखेगी,
निश्चय होगा अन्त काल का,
नित्य परिश्रम करने वाले तारों को भी मुक्ति मिलेगी,
लेकिन अन्त न मेरा होगा,
अन्तहीन मैं सदा रहा हूँ,
सदा रहूँगा !
प्रथम सृष्टि का बीज गिरा था जब धरती पर,
उससे भी पहिले जीकर मैं वृद्ध हुआ था,
और कि अब जब ठंडे हो जायेंगे सब नक्षत्र अजन्मे,
तब भी मेरी कथा चलेगी सृष्टि-पृष्ठ पर !
मैं हूँ तारों का प्रकाश,

स्वप्न-तरी : 'ड्रीम-बोट' का हिन्दी रूपान्तर

५०

ज्योति शिखा-सी भृकुटि प्रदीपित तप्त कांचन सदृश शरीर,
स्वप्न-ज्वाल निर्मित नौका में आया था वह मेरे तीर।
बोला—साथ चलोगे क्या तुम, अन्तराग्नि है क्या तैयार?
नीरवता हो गयी ध्वनित बन एक निगूढ़ मधुर झंकार।

अन्तर की विश्रान्ति-गुहा में छिपा हुआ कुछ उठा सिहर,
जीवन का चिर वांछित सुख सब स्मृति-पटल पर गया बिखर।
सोचा जब, आनन्द गया वह, त्याग सदा को अतिथि समान,
स्वप्न-तरी तिर गयी, हो गया स्वर्ण पुरुष वह अन्तर्ध्यान।

लोकान्तर के रिक्त शून्य में ही अब है उसका आवास,
प्रेम-शिखा बुझ गयी मिटा सब पूर्व हास आनन्द विलास।
अस्त हुआ सौभाग्य, रिक्तता ही है केवल पूर्ण विराम,
आती स्वप्न-तरी न, न आता वह हिरण्यमय देव अनाम।